संस्थापित १८६७ ई.

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १३० ● : अंक २० ● १५ मई, २०२५ (गुरुवार) ज्येष्ट कृष्णपक्ष तृतीया सम्वत् २०८२ ● दयानन्दाब्द २०१ वेद व मानव सृष्टि सम्वत्:१६६०८५३१२६

ईश्वर की वास्तविकता

-स्वामी ब्रह्मविदानन्द सरस्वती

नास्तिक और आस्तिक ये दोनों ही आज ईश्वर के पीछे पड़े हैं। एक ईश्वर को नष्ट करने के लिए और दूसरा ईश्वर की रक्षा करने के लिए। परन्तु विडम्बना है कि दोनों ही निराश हैं क्योंकि किसी के भी हाथ ईश्वर लग नहीं रहा है। ईश्वर दोनों से समान दूर हैं। कोई भी सफल नहीं हो रहा।

कारण हो सकता है ईश्वर दोनों से भयभीत हों, दोनों से बचना चाह रहे हों। परन्तु नास्तिकों से भयभीत हों, थोड़ी देर के लिए माना जा सकता है, क्योंकि विनाशकारी से कौन निर्भय हो सकता है ? किन्तु आस्तिकों से तो भय की कोई बात होनी नहीं चाहिए। अतः एक कारण यह हो सकता है कि अपने भी जब विश्वसनीय नहीं हो रहे तो उनसे भी भय स्वाभाविक हो जाता है। क्योंकि न तो आज पराये विश्वसनीय रहे न अपने। जो हानि आज शत्रु कर सकते हैं उनसे अधिक अपने ही करने लग गये हैं। देश, समाज और परिवार में व्यक्ति अधिकतम अपनों से ही तो बाधित हो रहा है। लोक में सर्वत्र प्रत्यक्ष है कि जिस पर विश्वास करो वही धोखा दे जाता है। शत्रुओं से तो पुनरपि सावधान हो सकते हैं, किन्तु अपनों से तो अकाल ही मारे जा रहे हैं।

हर कोई जो देख सकता है, देख रहा है। जो सुन सकता है, वह सुन रहा है कि नास्तिक अपने- अपने स्तर पर प्रतिशोध लेने में कहीं कोई न्यूनता नहीं छोड़ रहे। भगवान् का नाम आते ही बाहें चढ़ाने लगते हैं, मुट्ठियां भींच लेते हैं, ओंठ फड़फड़ाने लगते हैं, आँखें लाल-लाल करके, श्वास-प्रश्वास गर्म-गर्म लेने लगते हैं। ये समझने की बातें हैं। जो नास्तिक हैं, पर निरीह हैं, विवश हैं असाधन हैं, भीरु हैं, दुर्बल हैं, वे भी शान्त नहीं रहते। अशांत, क्रुद्ध, विक्षिप्त, उद्विग्न होकर कुछ बोलने लगते हैं, प्रतिक्रियाएं करने लगते हैं। आपा खोकर तिलमिलाने, चीखने-चिल्लाने लगते हैं। विष वमन करने लग जाते हैं। कुछ गाली-गलौज करके अपनी शूरता प्रकट करते हैं, तो कोई व्यंग्य उपहास करके स्वयं को ईश्वर द्रोही प्रमाणित करने लगते हैं। सुनने में तो यहाँ तक आया है कि किसी ने पृथक् से ईश्वर को उड़ाने के लिए परमाणु बम भी तैयार कर रखा है। ये तो नास्तिकों की कहानी रही।

इधर आस्तिकों की माया और ही निराली है। भले ही इनमें ईश्वर विरोधी लक्षण इतने प्रगाढ़ हो गये हैं कि साधारण बुद्धिहीनों को भी सब दिख रहा है, पुनरपि ये आस्तिक बने हैं। इनकी यह भी विशेषता ही है। जैसे कि ऐसी कितनी ही विभूतियाँ आज प्रसिद्ध हैं जो स्वयं को परमात्मा घोषित किये बैठे हैं। दिन-रात उनकी दरबारें सजती हैं। ऐसी कितनी शिष्य परम्परायें हैं जिनमें श्री गुरुदेव जी साक्षात् ब्रह्म मान्य हैं। कम से कम भगवान् के अवतार तो हैं ही। अब जब एक ओर इतने भगवान् हैं तो दूसरी ओर पहले से जो अकेले भगवान् हैं, उनके पास और क्या चारा बचता है, डरें नहीं तो क्या करें। एक सिंह को भी दूसरे सिंह के पास जाने में पसीना छूट जाता है, तो जहाँ अनेक सिंहों के सामने एक सिंह को खड़ा होना पड़े तो क्या होगा।

आस्तिकों में दूसरी विशेषता यह है कि उनका एक डिम-डिम घोष है कि भगवान् तो भक्त के वश में होते हैं। कोई कहता है भगवान् तो मानने की वस्तु है आदि आदि। यही कारण है कि भगवान् के सारे कार्यक्रम भक्त की ओर ही निर्धारित होते हैं। भगवान् को कब क्या करना है, सब भक्त से पूछने योग्य होता है, स्वयं कोई निर्णय नहीं ले सकते। कब सोना है कब जागना है, कब नहाना है, कब धोना है, क्या खाना है, क्या पीना है, किसको दर्शन देना है, किसको नहीं देना है, यह सब भक्त के हाथ में होता है, भगवान् के हाथ में कुछ नहीं। वे तो आजीवन खड़े हैं तो खड़े रहते हैं, पड़े हैं तो पड़े रहते हैं। जिससे दूर हैं उसके पास आ नहीं सकते,

जिसके पास हैं उससे दूर नहीं हो सकते। भगवान् के मन में तो कुछ होता है साधारण जनों के लिए परन्तु वे सीधे उनसे कुछ नहीं कह सकते। इसके लिए उनको प्रधान भक्त की वाणी का, शरीर का, हाथ का, आँख का सहयोग लेना होता है अथवा प्रधान भक्त को ही बताना होता है कि मेरी यह बात साधारण भक्त तक अपनी वाणी से बोल कर बता दो, हाथ से या आँख से संकेत कर दो। अतः प्रधान भक्त के द्वारा ही ईश्वर के अभिप्राय को सर्वसाधारण के लिए प्रकट किया जाता है। प्रधान भक्त जिसको चाहे ईश्वर से मिला सकते हैं अथवा सबको ईश्वर से मिलने से रोक सकते हैं। अन्य कोई विधा नहीं रही।

अब बात आती है क्या यही सत्य है ? ईश्वर का यही स्वरूप है? यही भक्ति है ? यही ईश्वर की प्राप्ति का उपाय है ? तो उत्तर है ऐसा कुछ भी नहीं है। नास्तिक और आज के अधिकतर आस्तिक ईश्वर के जिस स्वरूप को मानकर अपनी प्रतिक्रिया कर रहे हैं, वैसा कुछ भी है ही नहीं। ईश्वर का वास्तविक स्वरूप इनकी मान्यता से सर्वथा भिन्न है। अतः ईश्वर की वास्तविक भक्ति और प्राप्ति भी इनके क्रिया कलापों से भिन्न है।

वस्तुतः वेदों और ऋषियों के तर्क प्रमाण युक्त सिद्धान्तों, विधियों को जाने-माने बिना कोई भी ईश्वर को न ठीक-ठीक जान सकता है, न प्राप्त कर सकता है। अतः ईश्वर की वास्तविकता के लिए वेदों का अध्ययन और ऋषियों द्वारा निर्दिष्ट आचरण अनिवार्य है। बुद्धि विरुद्ध अपनी मनमानी का यहाँ कोई स्थान नहीं है। श्रुति स्पष्ट कहती है-

न तस्य कार्य करणंच विद्यते ।
स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च।।

ईश्वर नित्य है। उसमें कोई विकार कभी नहीं आता। ईश्वर का कोई शरीर, आंख, नाक आदि इन्द्रियाँ नहीं हैं। ईश्वर तो एक सर्वदा, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, आनन्द-स्वरूप, आदि गुणों से युक्त है। सृष्टि की उत्पत्ति, संचालन, विनाश, कर्मफलदाता, न्याय व्यवस्था आदि कर्म हैं। मिथ्या-ज्ञान, प्रमाद, द्वेष आदि क्लेशों से सर्वथा पृथक् है।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी
सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षीचेता
केवलो निर्गुणश्च।।
-श्वेताश्तरोपनिषद् ६-११

ईश्वर केवल एक है। सबका आधार और सबके कर्मों को साक्षी, चेतन और आनन्द स्वरूप तथा रूपादि प्राकृतिक गुणों से सर्वथा रहित है। ऐसा है वास्तविक ईश्वर। ज्ञान, वैराग्य और समाधि के बिना ईश्वर प्राप्ति का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभो यं
पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः।।
-मुण्डकोपनिषद् ३/१/५

सत्य-यथार्थ ज्ञान, कर्म, उपासना, अखण्ड ब्रह्मचर्य पूर्वक ज्ञान में ज्ञानानन्द स्वरूप ईश्वर को क्लेश-वासना रहित योगी संन्यासी ही देख पाते हैं। कोई अज्ञानी, क्लेशी अशुभ आचरणकर्तृता ईश्वर का दर्शन नहीं कर सकता। अतः ईश्वर प्राप्ति के लिए ऋषि निर्दिष्ट मार्गों का अनुसरण अनिवार्य है। ईश्वर का यथार्थ ज्ञान और प्राप्ति इसलिए भी सबके लिए अनिवार्य है कि-

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति
मानवाः।
तदा देवमविज्ञान दुःखस्थायन्ता
भविष्यति।।
-श्वेता.६/२०

जब मनुष्य आकाश को चटाई के समान लपेट लेगा तब ईश्वर को जाने बिना उनके सब दुःख दूर हो जायेंगे। पर ऐसा कभी संभव होगा नहीं। परमात्मा देव को जानना सबके लिए अनिवार्य रहेगा। ●●●

मरा हुआ धर्म कहीं हमें न मार दें

-योगाचार्य डॉ. प्रवीण कुमार शास्त्री

जिस प्रकार प्राणों के बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार धर्म (नैतिक आचरण) के बिना मनुष्य का भी कोई महत्त्व नहीं। योग साधना आयुर्वेद चिकित्सा और रेसिपी धर्म आचरण की वस्तु है। धर्म केवल प्रवचन और वाद-विवाद का विषय नहीं। केवल तर्क-वितर्क में उलझे रहना धार्मिक होने का लक्षण नहीं है। धार्मिक होने का प्रमाण यही है कि व्यक्ति का धर्म पर कितना आचरण है। व्यक्ति जितना- जितना धर्म पर आचरण करता है उतना-उतना ही वह धार्मिक बनता है। 'धृ धारणे' से धर्म शब्द बनता है, जिसका अर्थ है धारण करना। धर्म किसी संगठित लोगों के समुह का नाम नही न ही अभिमान व गर्व करने की वस्तु है । ''यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'' धर्म मनुष्य में शिवत्व/पवित्रता की स्थापना करना चाहता है। वह मनुष्य को पशुता के धरातल से ऊपर उठाकर मानवता की ओर ले जाता है और मानवता के ऊपर उठाकर उसे देवत्व की ओर ले-जाता है। यदि कोई व्यक्ति धार्मिक होने का दावा करता है और मनुष्यता और देवत्व उसके जीवन में नहीं आ पाते, तो समझिए कि वह धर्म का आचरण न करके धर्म का आडम्बर कर रहा है। भाषाणां जननी संस्कृत भाषा।

मनु महाराज के अनुसार धर्म की महिमा

वैदिक साहित्य में धर्म की बहुत महिमा बताई गई है। मनु महाराज ने लिखा है-वैदिक संस्कृत नामुत्र हि सहायार्थं पितामाता च तिष्ठतः।

न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति
केवलः।।
—(मनुस्मृतिः ४/२३९)

अर्थात्—परलोक में माता, पिता, पुत्र, पत्नि और गोती (एक ही वंश का) मनुष्य की कोई सहायता नहीं करते।वहाँ पर केवल धर्म ही मनुष्य की सहायता करता है।

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव
प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च
दुष्कृतम् ।।
—(मनुस्मृतिः ४/२४०)

अर्थ—जीव अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मृत्यु को प्राप्त होता है।अकेला ही पुण्य भोगता है और अकेला ही पाप भोगता है।

एक एव सुहृद्धर्मो

क्रमशः.....७ पर

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

पंकज जायसवाल
मंत्री/सम्पादक

आर्य शिवशंकर वैश्य
प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

घुटनों पर पाकिस्तान

गतमाह पहलगाम की घटना ने देशवासियों को झकझोर कर रख दिया। लोग बदला लेने को आतुर थे। हमारी माँ बेटियों के सिन्दूर को मिटाने वाले क्रूर आतंकियों को सबक सिखाना आवश्यक हो गया था। जो पाकिस्तान द्वारा पोषित थे। आखिर लगभग दो सप्ताह के बाद भारत ने पूरे मिशन को ही उन मारे गये बेगुनाहों की विधवाओं को समर्पित करते हुए ''ऑपरेशन सिंदूर'' के नाम से पाकिस्तान को करारा जवाब दे दिया। भारतीय वायु सेना ने पूरे पाकिस्तान और गुलाम कश्मीर में फैले नौ आतंकी केन्द्रों को सटीक निशाना बना कर उन्हें ध्वस्त कर दिया। जिससे बौखला कर पाकिस्तान ने भारत के सीमावर्ती अनेक शहरों व धार्मिक स्थलों को निशाना बनाने का असफल प्रयास किया। पाकिस्तान की कायराना हरकत ने आग में घी डालने का कार्य किया। जवाबी कार्यवाही में भारत ने पाकिस्तान के कई बड़े शहरों के एयर डिफेन्स सिस्टम को ध्वस्त करते हुए कई हवाई अड्डों को पंगु बना दिया। यहाँ तक बार-बार परमाणु हमले की धमकी देने वाले पाक के परमाणु ठिकाने के पास ही हमला कर उसे घुटनों के बल ला दिया।

इस सैन्य संघर्ष की कार्यवाही में भारत ने अपनी युद्धक क्षमताओं का सफलता पूर्वक प्रदर्शन करते हुए अपनी सही खुपिया जानकारी के आधार पर लाहौर, कराची आदि सहित नौ सैनिक केन्द्रों को निशाना बनाया उन्हें क्षतिग्रस्त कर अपने लक्ष्य को हासिल किया।

कई दशकों से पाकिस्तान पोषित आतंकी की घटनाओं ने भारत के धैर्य की परीक्षा ली। लेकिन वर्तमान सरकार की रणनीति ने पूरी तश्वीर ही बदल दी। भविष्य में होने वाली किसी भी घटना को भारत के विरूद्ध युद्ध माना जायेगा की चेतावनी के बाद भी यदि पाकिस्तान नहीं सुधरता है तो उसे भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। उसके अन्दर पल बढ़ रहे और कई पाकिस्तान उसे चैन नहीं लेने देंगे। जो पाकिस्तान के कई विभाजन के कारण बनेंगे। जिनमें बलूचिस्तान प्रमुख है।

कुछ लोगों का कहना है कि भारत को आतंकवाद की समस्या का स्थायी समाधान करना चाहिए। लेकिन वह यह नहीं बता पाते कि क्या करना चाहिए। आपरेशन सिन्दूर ने इस ओर कदम बढ़ दिये हैं। आगे समय बतायेगा कि किस करवट ऊँट बैठेगा। पंगु अर्थ व्यवस्था, विभाजन की कगार पर खड़े कई प्रान्त पाकिस्तान के विनाश की पटकथा स्वयं लिख देंगे।

महराज मनु ने इस सम्बन्ध में उचित ही कहा है-

साहसे वर्तमानम् तु यो मर्षयति पार्थिवः।
स विनाशम् व्रजत्याशु विद्वेषम् चाधिगच्छति।।

अर्थात् जो राजा साहस में वर्तमान पुरूष को न दण्ड देकर सहन करता है वह राजा शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है और राज्य में द्वेष उठता है। क्यांकि-

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।
प्रकाशम् वाऽप्रकाशम् वा मन्युस्तन्मृत्यु मृच्छति।।

यानी दुष्ट पुरुषों के मारने में हन्ता को पाप नहीं होता, चाहे प्रसिद्ध मारे चाहे अप्रसिद्ध, क्योंकि क्रोधी को क्रोध से मारना जानो, क्रोध से क्रोध की लड़ाई है।

महर्षि दयानन्द ने अपने अमूल्य ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के छटे समुल्लास में राजा के सम्बन्ध में सत्य लिखा है कि ''वयम् प्रजापतेः प्रजा अभूम'' (यजुर्वेद)

हम प्रजापति अर्थात परमेश्वर की प्रजा और परमात्मा हमारा राजा हम उसके किंकर भृत्यवत है। यही गुण अपने राष्ट्र सेवक में परिलक्षित होते हैं।

-सम्पादक

सार्वदेशिक आर्य वीरांगना दल का शिविर दिल्ली में

सार्वदेशिक आर्य वीरांगना दल का वार्षिक राष्ट्रीय शिविर २०२५ इस बार दिल्ली में दिनांक ७ जून से १५ जून, २०२५ तक संस्कार शिक्षा कुंज स्कूल, गोण्डा रोड, गली नं.९-बी, स्वतंत्र नगर, नरेला, दिल्ली-११००४० (मोबाइल नं. ९३१५२५४९००) में आयोजित किया जा रहा है। इसमें भाग लेने के लिए १३ वर्ष से अधिक आयु की आर्य वीरांगनाएं दिनांक २६ मई, २०२५ तक अपने नाम निम्नलिखित नम्बरों पर देवें ताकि व्यवस्था सुचारू रूप से हो सके।

साध्वी डॉ. उत्तमा यति
प्रधान संचालिका
मो. ९६७२२८६८६३

मृदुला चौहान
संचालिका
मो. ९८१०७०२७६०

आरती खुराला
सचिव
मो. ९९१०२३४५६५

नीरज कुमारी
कोषाध्यक्ष
मो. ८९२०२०८५३६

वेद मंत्र

चौथा मन्त्र

ईशा वास्यमिदःसर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।

- यजुर्वेद ४०.१

अन्वय - जगत्यां यत् किंच जगत् (अस्ति), इदं (तत्) सर्वं ईशा आवास्यं (अस्ति)। तेन त्यक्तेन (सता जगता) भुंजीथा। मा गृधः । धनं कस्य स्विद् (भवेत् ?)

अर्थ- (जगत्याम्) इस सृष्टिरूपी प्रपंच में (यत् किंच) जो कुछ (जगत्) गतिविधान है (इदम् सर्वम्) वह सब (ईशा) परमात्म-शक्ति के द्वारा (आवास्यम्) परिपूरित होना चाहिए। (तेन) उस जगत् या गतिविधान की सहायता से (भुंजीथाः) हे मनुष्य ! तू सुख का उपभोग कर। (त्यक्तेन - त्यक्तेन जगता) ऐसे गतिविधान के द्वारा जिसको तूने छोड़ दिया है अर्थात् जिसमें तू चिपटा नहीं है। (मा गृधः) चिपट मत ! (धनम्) धन (कस्य स्वित्) किसका है? अर्थात् किसी एक का नहीं।

व्याख्या- इस मन्त्र में मुख्य शब्द 'जगत्' है। 'जगत्' का ही प्रकरण है। 'जगत्' का मुख्य अर्थ क्या है? जीव से इसका किस प्रकार का सम्बन्ध होना चाहिए? किन भूलों के होने की सम्भावना है जिनसे बचना आवश्यक है ? इन सब बातों का इस मन्त्र में उपदेश दिया गया है। इस मन्त्र में कई शब्द गम्भीर विचार के पात्र हैं, क्योंकि इस विषय में अनेक भ्रान्तियुक्त धारणाएं हैं। मन्त्र में कोई शब्द कठिन नहीं है। केवल सीधी रीति से विचार करना चाहिए और कल्पनाओं से बचना चाहिए।

(जगत्याम्) जगती में। जगती नाम है समस्त प्रपंच का जिसको सृष्टि या संसार कहते हैं। यह संसार परिवर्तनशील है, एकरस नहीं। परिवर्तन का नाम है गति! संसार नाम ही सम्पूर्ण गतिविधान का है, अतः 'जगत्' का अर्थ हुआ ''गतिविधान।'' गतिविधान तो प्रत्यक्ष ही है। इसके सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं। घटनाएं नित्यप्रति होती हैं। प्रत्येक क्षण में कोई-न-कोई गति हो जाती है। यह 'गति' न भ्रम है न कल्पित है। इसका आधार अविद्या नहीं है। अर्थात् ऐसी वस्तु नहीं जिसका अस्तित्व हो ही नहीं और समझनेवाले ने अविद्या या भान्ति के कारण इसको 'गति' समझ रक्खा हो। ये गतियां परस्पर असम्बद्ध भी नहीं। एक का दूसरी से सम्बन्ध है। इसीलिए जगत् का अर्थ 'गतिविधान' करना चाहिए।' जगती' सामूहिक अर्थ देता है। 'जगत्' वैयक्तिक गति का सूचक है। इसीलिए इसके साथ 'यत् किंच' शब्द का प्रयोग किया गया है।

'गतिविधान' के सम्बन्ध में पहली बात यह सोचनी है कि 'गति' है क्या ? आप चलते हैं एक स्थान से दूसरे स्थान को। एक स्थान से गति आरम्भ होती है, दूसरे स्थान पर समाप्त होती है। स्थान (स्थ) ठहरा हुआ है। वह गति वहां से आरम्भ होती है 'गम्' के धात्वर्थ का 'स्था' के धात्वर्थ के साथ परस्पर सम्बन्ध है। यदि स्थान न हो तो गति का आरम्भ कहां से हो? और यदि स्थान न हो तो गति की समाप्ति कहां पर हो ? अर्थात् ठहरना और चलना एक दूसरे की विरोधी क्रियाएं नहीं अपितु सापेक्षिक हैं। परिवर्तन का अर्थ ही यह है कि जो चीज जिस अवस्था में हो उससे दूसरी अवस्था को प्राप्त हो जाए। परिवर्तित वस्तु नई नहीं है उसमें पुराना अस्तित्व बना हुआ है। यह भावना न हो तो परिवर्तन या गतिशीलता कह ही नहीं सकते। बालोंवाले आदमी को मूंड दिया जाए तो कहेंगे कि पहले यह बालवाला था, अब मुंडा हो गया। यदि उस बालवाले आदमी को हटाकर उसकी जगह किसी मुंडे को ला खड़ा किया जाए तो यह नहीं कहेंगे कि बालवाला आदमी परिवर्तित होकर मुंडा हो गया। गधे के सिर पर सींग होते ही नहीं, बैल के सिर पर होते हैं, अतः बैल के सींग काटकर उसको बदला हुआ कह सकते हैं गधे को नहीं। इस बात को पूर्ण रीति से समझ लेना चाहिए। तभी मन्त्र का असली रहस्य खुल सकेगा।

गति क्या है ? इस विषय में दार्शनिक जगत् में भिन्न-भिन्न धारणाएं हैं। कुछ लोग कहते हैं कि 'गति' वास्तविक नहीं, भ्रान्तिमात्र जैसे सूर्य चलता नहीं परन्तु चलता प्रतीत होता है। रेल के यात्री को सड़क के वृक्ष चलते दिखाई देते हैं वस्तुतः वे चलते नहीं। इतना तो ठीक है कि कभी-कभी हम ठहरी चीज को चलती समझ लेते हैं परन्तु साथ ही यह भी तो है कि चलती चीज को ठहरी हुई समझते हैं। रेल का यात्री न चलते हुए वृक्षों को चलता हुआ देखता है और चलती हुई रेल को ठहरी हुई कहता है। इससे स्पष्ट है कि जो युक्ति 'गति' को भ्रान्तियुक्त मानने के लिए दी जाती है वही युक्ति 'स्थिति' को भ्रान्त मानने के लिए दी जा सकती है। इससे 'गति' मात्र का खण्डन नहीं होता। भ्रान्ति इसलिए नहीं है कि 'गति' की कोई सत्ता नहीं, अपितु इसलिए है कि भ्रान्ति का कारण अन्य है। जिस पुरुष के मन में भ्रान्ति उत्पन्न हुई उसके मन को भी तो गतिशील मानना पड़ेगा। भ्रान्ति का माननेवाला तो स्वयं गतिशील सिद्ध हो गया। इसलिए 'गति' कल्पित नहीं।

'गति' के अस्तित्व के विरोधी एक हेत्वाभास देते हैं। वे कहते हैं कि कोई वस्तु उस स्थान पर गति नहीं कर सकती जहां वह है और उस स्थान पर भी गति नहीं कर सकती जहां वह नहीं है, अतः दोनों अवस्थाओं में गति असम्भव है। अतः 'गति' भ्रममात्र है। (A thing does not move where it is- It does not move where it is not- Therefore is does not move at all-) यह ठीक है कि जिस देश-विशेष को मैं घेरे हुए हूं उसी देशविशेष में मेरी गति असम्भव है। गति के लिए उस स्थान को छोड़ना होगा। यह भी ठीक है कि जहां मैं हूं ही नहीं, वहां मेरी गति कैसे होगी ? परन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं कि मैं उसके स्थान को जहां मैं हूं छोड़ भी नहीं सकता। (A thing does not move] where it is- It cannot move where it is not- But it can move from where it is to where it is not-)

यदि गति वास्तविक है तो जगत् अर्थात् गतिविधान भी वास्तविक हुआ और जगत् अविद्या, माया या भ्रान्तिमात्र नहीं रहा। विधान (System) भ्रान्तियों का नहीं हो सकता। जगत् का भाव है अभाव नहीं। सूर्य निकलता और डूबता है। वृक्ष बढ़ता और नियमपूर्वक उसका ह्रास हो जाता है। यह केवल गति नहीं अपितु गतिविधान है। दो गतियों में परस्पर सम्बन्ध है। जैसे किसी यन्त्र के भिन्न-भिन्न पुर्जे अलग-थलग नहीं होते। पुर्जे अलग रहें तो वह यन्त्र नहीं, न वे पुर्जे यन्त्र के हैं। इसी प्रकार यदि असम्बद्ध गतियां हों तो वह न गतिविधान है न जगत् है।

शेष पृष्ठ-७ पर देखें.....

ऋषि दयानन्द ने सत्य के निर्णयार्थ सब धर्माचार्यों से शास्त्रार्थ किये थे

–मनमोहन कुमार आर्य

सभी मनुष्य बुद्धि रखते हैं जो ज्ञान प्राप्ति में सहायक होने के साथ सत्य व असत्य का निर्णय कराने में भी सहायक होती है। एक ही विषय में अनेक मनुष्यों व आचार्यों के विचार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। यह भी सत्य एवं प्रामणिक तथ्य है कि एक विषय में सत्य एक ही होता है। गणित में दो व दो चार होते हैं। कोई गणित का विद्वान व आचार्य इससे भिन्न मान्यता वाला नहीं होता है। इसी प्रकार से धर्म विषय में मुख्यतः ईश्वर के स्वरूप, गुण-कर्म-स्वभाव, आत्मा के स्वरूप व गुण-कर्म-स्वभाव तथा उपासना की विधि आदि विषयों की चर्चा करके एक सत्य सिद्धान्त स्थापित किया जा सकता है व करना भी चाहिये। वर्तमान में व महाभारत के बाद से इन विषयों में एक मत न होकर अनेक आचार्यों के भिन्न-भिन्न मत व विचार रहे हैं। महाभारत के बाद आदि शंकराचार्य जी ऐसे आचार्य हुए हैं जिन्होंने जैन मत के आचार्यों से ईश्वर के अस्तित्व पर शास्त्रार्थ किया था और शास्त्रार्थ में जो निष्कर्ष व तथ्य सामने आये थे, वह स्वामी शंकराचार्य जी का अद्वैत मत था जिसे शास्त्रार्थ की शर्तों के अनुसार सभी आचार्यों व राजाओं आदि ने भी स्वीकार किया था। इसके बाद से यह परम्परा बन्द पड़ी थी। ऋषि दयानन्द (१८२५-१८८३) का काल आते-आते धर्म विषयक सन्देह व भ्रान्तियां अपनी चरम सीमा पर थी। इन्हें धार्मिक अन्धविश्वास भी कहते हैं। ऋषि दयानन्द अपनी बाल्यावस्था से ही जिज्ञासु थे। वह सत्य ज्ञान को प्राप्त करने के इच्छुक थे। उन्होंने शिवरात्रि, १८३९ के दिन मूर्तिपूजा पर इसी कारण सन्देह किया था कि ईश्वर के जो गुण, कर्म व स्वभाव शास्त्रों में वर्णित हैं, वह मूर्ति में परिलक्षित नहीं होते थे। उन्होंने विद्वानों से शंकायें की थीं परन्तु कोई विद्वान उनका समाधान नहीं कर सका था। इसी कारण सच्चे शिव व मृत्यु से रक्षा व इस पर विजय प्राप्त करने के लिये उन्होंने सत्य के अनुसंधान हेतु अपना पितृ-गृह को छोड़कर देश भर में विद्वानों की खोज की व उनसे मिलकर ज्ञान प्राप्ति सहित अपना शंका समाधान किया था।

ऋषि दयानन्द ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये अपूर्व तप किया और बाद में वह अपनी सभी शंकाओं के उत्तर प्राप्त करने में सफल हुए। उन्हें सच्चे शिव का सत्यस्वरूप भी विदित हुआ था तथा मृत्यु पर विजय प्राप्ति के साधनों का ज्ञान भी हुआ था जिसे उन्होंने अपने जीवन में धारण कर उसका प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत किया है। ऋषि दयानन्द को सत्य ज्ञान रूपी विद्या अपने विद्यागुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी से मथुरा में १८६० से १८६३ के मध्य तीन वर्ष वेदांगों का अध्ययन कर प्राप्त हुई थी। इससे पूर्व वह समाधि सिद्ध योगी भी बन चुके थे। विद्या प्राप्त कर लेने, सभी शंकाओं व भ्रमों से निवृत्त होने सहित सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी तथा सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार कर लेने के बाद उन्होंने संसार से अज्ञान व अविद्या दूर करने के कार्य को अपना मिशन व उद्देश्य बनाया था। इसी कार्य को करते हुए ही उन्होंने अपने जीवन का उत्सर्ग किया और भारत सहित विश्व को अविद्या के कूप से निकाला। ऋषि दयानन्द ने महाभारत युद्ध से पूर्व प्रचलित ईश्वर प्रदत्त वेद ज्ञान के सत्यस्वरूप व वेदार्थों का प्रकाश किया। उन्होंने पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा रचित वैदिक आर्ष साहित्य के सत्य सिद्धान्तों को निश्चित कर उनकी सत्य व्याख्याओं का मार्ग भी प्रशस्त किया। उनकी ही देन है कि आज हमारे पास सभी वेदों के सत्य वेदार्थों से युक्त वेदभाष्य व सभी वैदिक ग्रन्थों व विषयों के अनेकानेक व्याख्या ग्रन्थ हिन्दी आदि भाषाओं में उपलब्ध हैं जिसको साधारण हिन्दी पठित व्यक्ति भी जान व समझ कर विद्वान एवं सत्य वैदिक धर्म के सच्चे अनुयायी बन सकते हैं तथा मनुष्य जीवन के लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को सिद्ध कर सकते हैं।

विद्या प्राप्त कर मनुष्य का मुख्य कर्तव्य उस विद्या की रक्षार्थ उसका मौखिक व लेखन के द्वारा प्रचार करना होता है। यही कार्य ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन में किया। विद्वान का एक प्रमुख कार्य व कर्तव्य अज्ञान व अविद्या को नष्ट करना तथा ज्ञान व विद्या की वृद्धि करना भी होता है। इस कार्य को करने के लिये ही ऋषि दयानन्द ने अज्ञान में पड़े हुए विश्व के लोगों को अज्ञान व अविद्या के दुःखमय जीवन से बाहर निकालने के लिये अपने विद्यामृतमयी व्याख्यानों व उपदेशों से देश भर में घूम कर वैदिक सत्य मान्यताओं का प्रचार किया। वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है जिसका पढ़ना-पढ़ाना व सुनना-सुनाना सब मनुष्यों का परम धर्म होता है। वस्तुतः मनुष्य को मनुष्य इसी लिये कहा जाता है कि यह मननशील प्राणी है। मनन का अर्थ सत्य व असत्य का विचार करना तथा असत्य का त्याग और सत्य को अपनाना व स्वीकार करना होता है। मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिये ही वस्तुतः ऋषि दयानन्द ने मिथ्या ग्रन्थों का खण्डन व सत्य ज्ञान से युक्त वेदों का प्रचार व प्रसार किया। सत्य के प्रचार के लिये असत्य का खण्डन करना आवश्यक होता। माता-पिता व आचार्य भी अपने शिष्यों व बालकों की अविद्या व असत्य बातों को दूर करने के लिये असत्य बातों के दोष बताकर अपने शिष्यों से सत्य सिद्धान्तों को ग्रहण कराते हैं। यही कार्य ऋषि दयानन्द ने भी परोपकार व परहितार्थ किया। वह अपने व्याख्यानें में सत्योपदेश करते थे। प्रसंगानुसार असत्य छुड़ाने के लिए असत्य मान्यताओं व परम्पराओं का खण्डन तथा सत्य मान्यताओं का मण्डन व समर्थन करते थे। वह सत्यासत्य पर चर्चा करने व सत्य का निर्णय करने के लिये सभी मतों के अनुयायियों व आचार्यों को निमंत्रण भी देते थे। बहुत से स्वधर्मी व परमतावलम्बी विद्वान उनके पास आकर अपनी अपनी शंकाओं का समाधान करते थे। सन् १८६३ से अपनी मृत्यु ३० अक्टूबर १८८३ तक उन्होंने इस कार्य को देश के अनेक स्थानों में जाकर जारी रखा और सभी लोगों को सत्य ज्ञान अमृत का पान कराकर संतृप्त किया था।

प्राचीन काल में सत्य का निर्णय करने के लिये परस्पर संवाद, लेखन तथा शास्त्रार्थ की परम्परा थी। इन विधियों से ही सत्य का निर्णय होता है। ऋषि दयानन्द ने संवाद, लेखन व शास्त्रार्थ का भरपूर उपयेाग किया। सभी मतों के आचार्य व अनुयायी उनके पास आते व अपने सन्देह दूर करते थे। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदभाष्य, पंचमहायज्ञविधि, संस्कारविधि, आर्याभिविनय, गोकरुणानिधि, व्यवहारभानु आदि अनेक ग्रन्थों का प्रणयन व प्रचार अविद्या को दूर करने के लिये किया। संसार में उनके समय में वेद तो अत्यन्त परिश्रम करने पर उपलब्ध हो सकते थे परन्तु वेदों के सत्य वेदार्थ उपलब्ध नहीं थे। इस अभाव को भी ऋषि दयानन्द व उनके बाद उनके अनुयायी विद्वानों ने पूरा किया। ऋषि दयानन्द ने वेदकालीन परिपाटी के अनुसार वेदों के सत्य अर्थों का अपने ऋग्वेद तथा यजुर्वेद भाष्य में प्रकाश किया है। ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना भी सत्य विद्या के ग्रन्थ वेदों के प्रचार व प्रसार के लिये ही की। उन्होंने आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य वेदों के प्रचार प्रसार सहित अविद्या के नाश तथा विद्या की वृद्धि को बनाया है।

ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन में अनेक शास्त्रार्थ किये। उनका काशी में १६ नवम्बर, १८६९ को सनातनी पौराणिक मत के आचार्यों से मूर्तिपूजा की वेदमूलकता व तर्क एवं युक्तिसंगत होने पर हुआ शास्त्रार्थ प्रसिद्ध है। इस शास्त्रार्थ में सम्मिलित पौराणिक मत के ३० से अधिक शीर्ष विद्वान भी मूर्तिपूजा के समर्थन में वेदों का एक भी मन्त्र प्रस्तुत नहीं कर पाये थे। आज तक भी किसी पौराणिक विद्वान को वेदों में ईश्वर की

मूर्तिपूजा करने का कोई संकेत उपलब्ध नहीं हुआ है। वेद ईश्वर व आत्मा के सत्यस्वरूप का प्रतिदिनधित्व करते हैं। वेदों के अनुसार ईश्वर का सत्यस्वरूप सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। ईश्वर सर्वज्ञ है, उसने जीवों के कर्मों का सुख व दुःख रूपी फल-भोग कराने व मुक्ति प्रदान करने के लिये साधन रूप में इस सृष्टि को बनाया है। ईश्वर जीवों के कर्म फलों का विधाता व व्यवस्थापक है। वह वेदज्ञान का दाता है। जीव सत्य व चेतन स्वरूपवाली अल्पज्ञ, अनादि, अमर, अविनाशी, एकदेशी, ससीम, जन्म-मरण धर्मा, वेदाचारण से जन्म मरण से मुक्त होने वाली तथा मोक्षानन्द को प्राप्त होने वाली सत्ता है। ईश्वर सभी जीवों हिन्दू, ईसाई, जैन, बौद्ध, सिख आदि सबका साध्य है तथा यह प्रकृति व सृष्टि सब जीवों को मुक्ति प्राप्त करने-कराने में साधन हैं। ऋषि दयानन्द व उनके परवर्ती विद्वानों के साहित्य सहित वेद, उपनिषद, दर्शन व मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में भी इस पर प्रकाश पड़ता है। अतः सबको वेदों की शरण में आकर शुभकर्मों को करते हुए मुक्ति प्राप्त करने के साधनों को करना चाहिये। आर्यसमाज को जितना अपेक्षित था, वह प्रचार नहीं कर सका। जितना प्रचार किया उतनी अविद्या दूर हुई है परन्तु लक्ष्य की दृष्टि से यह उपलब्धि बहुत ही अल्प मात्रा में है। आज वैदिक धर्म व मानवता पर अनेक प्रकार के संकट मंडरा रहे हैं। इसकी ओर भी आर्यसमाज सहित सभी हिन्दु बन्धुओं को ध्यान देना चाहिये। यदि अब भी नहीं जागेंगे तो आर्य-हिन्दू जाति का अस्तित्व समाप्त हो सकता है। अतः ईश्वर को मानने वाले सभी सच्चे आस्तिक जनों को एकजुट व संगठित होकर अपने हितों पर विचार करना चाहिये एवं परस्पर संगठित होकर दो नदियों के जल के समान परस्पर मिलकर एक दूसरे से कदापि पृथक न होने के गुण को ग्रहण व धारण कर आपस में सहयोग कर सनातन वैदिक हिन्दू धर्म पर उत्पन्न सभी संकटों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये।

ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन में सभी मतों के आचार्यों से सत्य के निर्णयार्थ शास्त्रार्थ व शास्त्रार्थ चर्चायें करके सबका समाधान किया था। उनके एक दर्जन से अधिक शास्त्रीय विषयों व शंका समाधानों से सम्बन्धित ग्रन्थ प्रकाशित हैं। आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली ने सन् १९८१ में 'दयानन्द शास्त्रार्थ-संग्रह तथा विशेष शंका समाधान' नाम से एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन किया था। पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी ने भी 'ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन' नाम से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उपयोगी ग्रन्थ का प्रकाशन किया है। सत्यार्थप्रकाश एवं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों से भी सभी विषयों में मनुष्यों का सन्देह निवारण होता है। अन्य विद्वानों ने इन विषयों पर अनेक ग्रन्थ थी लिखे हैं। इन ग्रन्थों का अध्ययन कर मनुष्य सभी धर्म विषयक मान्यताओं में निर्भ्रान्त हो सकते हैं। ऋषि दयानन्द ने अपने समय में शास्त्रार्थ की परम्परा का पुनर्द्धार किया था। उनका कार्य आज भी प्रासंगिक है। आर्यसमाज व सभी मतों को इसे अपनाना चाहिये। सत्यधर्म मतावलम्बियों का तो यह कर्तव्य है कि वह सत्य के प्रचारार्थ शास्त्रार्थ परम्परा को पुनर्जीवित करें। विज्ञान में भी सत्य का निर्णय संवाद, लेखन, चर्चा, गोष्ठियों व बहस करके ही होता है। विज्ञान में इसे अच्छा माना जाता है। सभी वैज्ञानिक सत्य का आदर करते हैं। इसी लिये विज्ञान आज बुलन्दियों पर पहुंचा है। मत-मतान्तर के नेता वा आचार्य ज्ञान विषयक अपनी न्यूनताओं को जानते हैं। इसलिये वह शास्त्रार्थ करना तो दूर, शास्त्रार्थ के नाम की चर्चा करने से भी बचते हैं। वह शास्त्रार्थ करने के विरुद्ध ही प्रायः है। बिना संवाद, लेखन, चर्चा व शास्त्रार्थ के सत्य का निर्णय नहीं हो सकता। अतः सभी मतों के विद्वानों को मिलकर सत्य के अनुसंधान व उसके प्रचार के लिये धर्म चर्चा, संवाद व शास्त्रार्थ को अपनाना चाहिये। ऋषि दयानन्द का वेदादि शास्त्रों की परम्परा का निर्वहन करने व सत्यार्थप्रकाश में तर्क व युक्ति से सत्य का निर्णय करने के लिये संसार के निष्पक्ष विद्वानू हमेशा उनको स्मरण रखेंगे। इसी सिद्धान्त पर चलकर मानवता की रक्षा होगी तथा विश्व का कल्याण होगा। ऋषि दयानन्द को हमारा सादर नमन है।

भारत में इस्लामिक आतंन्कबाद के कारण और निवारण

-स्वामी हरीश्वरा नन्द सरस्वती

सुयोग्य लेखक श्री राकेश कुमार आर्य व्दारा उपरोक्त शीर्षक से रचित लघु पुस्तिका को जिसको अमर स्वामी प्रकाशन व्दारा प्रकाशित किया गया है (प्रकाशक से आज्ञा लेने के बाद), आधार मानकर इस पुस्तक में से कुछ विन्दु चुनकर पाठकों के सामने संक्षेप में लेख के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा है। जो वर्तमान समय में पाठकों तक पहुंचाना बहुत आवश्यक होगया है।

भारत में आतंन्कबाद की समस्या कोई दस-बीस वर्ष पुरानी नहीं है, भारत में आतंन्कबाद की यह समस्या सदियों पुरानी है। इस्लाम के हमलों के पीछे, इस्लामिक मूलतत्वबाद प्रमुख कारण है। जिसमें दारुल इस्लाम और दारुल हरब के रूप में दुनियां को बांट कर देखा जाता है। इसमें इस्लाम को मानने वाला व्यक्ति मतान्ध होकर दुनियाँ को ३ निम्न खेमों ही देखना चाहता है। (१) दारुल इस्लामः जिन देशों का इस्लामी करण हो चुका है। (२) दारुल हरबः-जिन देशों में इस्लामी करण किया जाना बाकी है। इस सिध्दान्त को न मानने वाले को मौत या इसलाम में से एक को चुनने का फरमान सुना दिया जाता है। तब यह प्रवृत्ति जुनून बन जाती है। उपरोक्त विचार के लिये इस्लाम में पवित्र मानी जाने वाली पुस्तक कुराने शरीफ पुस्तक ही प्रेरणा श्रोत बनती है। किसी विचारक ने कहा है कि जब तक कुरान रहेगा जब तक आतंकबाद रहेगा।

साम्यबादी लेखक और साहित्यकार हमें यह बताने का प्रयास करते हैं कि, भारत में आतंकबाद कुछ अशिक्षित और वे रोजगार मुस्लिम युवकों की मानसिकता की उपज है, और कुछ नहीं। भारत में दाहर राजा से लेकर राजा जयपाल, राजा अनंन्गपाल, महाराजा पृथ्वीराज चौहान तक और इसी काल खंन्ड़ में सोमनाथ जैसे मंन्दिरों की लूट और उन्हें विनष्ट करने की असंख्य घटनायें, इसी आतंन्कबाद (मजहवी जुनून) के कारण ही तो सम्भव हुई थी। हमें वर्तमान के अवलोकन के लिये अतीत को खगालना ही पड़ता है, क्यों कि वर्तमान पर अतीत की छाया अवश्य पड़ती है। यदि हम वर्तमान के साथ अतीत को न जोड़े तो समझ लो, कि हम आत्म विनास की ओर बढ़ रहे हैं। यदि हम आज भी जेहादियों की कार्य-शेली को देखें तो धर्मान्तरण, लूट-खसोट और काफिरों की हत्या, उनके धर्म स्थलों को तोड़ने की आज भी उसी प्रकार प्रक्रिया होरही हैं, जिस प्रकार ४वीं, ६वीं, १०वीं, ११वी और १२वीं शताब्दी में होती थी। लोग इतिहास की घटनाओं से शिक्षा नहीं लेते और रोते रहते हैं। अतः यदि आज भी हमारे समाज में इस्लामिक आतंकबाद सिर उठा रहा है, तो समझिये कि भारत ने इतिहास में से कुछ शिक्षा नहीं ली।

इस्लामिक विद्वानों, चिन्तकों और लेखकों से लेखक का निवेदन है, कि इतिहास के क्रूरता पूर्ण सत्य को वर्तमान के इस्लामिक आतंकवाद के रथ में पुनः उद्घाटित, प्रसारित व प्रचारित न होने दें। यदि आज आप किसी राष्ट्र को समाप्त करके उसके सारे निवासियों को यदि जबरदस्ती अपने सम्प्रदाय में दीक्षित करने का प्रयास करेंगें, तो समझ लो कि विश्व को आप भारी विनास की ओर ले जारहे हैं।

तारीख १३-३-२२ को गुजरात प्रान्त के अहमदाबाद शहर से प्रकाशित दिव्य भाष्कर समाचार पत्र में प्रकाशित एक लेख में समाचार है कि, साउदी अरब में एक दिन में ८१ लोगों को फाँसी दी गई। अलकायदा, और हूती के विद्रोहीयों के सामने कार्यवाई हुई। यह लेख इस बात को सिध्द करता है कि, साउदी अरब सम्पूर्ण इस्लामिक राष्ट्र होने के बाबजूद भी, वहाँ पर आतंकबाद बिफरा हुआ है। इस बात से यह सिद्ध होता है कि, इस्लाम को मानने वालो के दिमाग में जो प्रारम्भिक संस्कार सदियों से पड़े हुये कि, लूट-पाट, छीना-झपटी, महिलों के साथ अभद्र व्यवहार कर उन्हें अपमानित कर जबरदस्ती बलात्कार, जबरन जमीन हथिया लेना, ऐयासी भरी जिन्दगी गुजारना, जन्नत में जाने की कल्पना करना, जहाँ पर ७२-७२ हूरों यानी सुन्दर-सुन्दर महिलाओं का मिलना, और सुन्दर-सुन्दर कम उम्र लड़के यानी (गिलमे) आदि की मिलने की कोरी कल्पना के सपने इन धूर्त मौलवियों ने दिखाये है, इस से आगे इन आतंकवादियो को कुछ दिखाई ही नहीं देता है। यहाँ पर भी लूट-पाट कर अयासी की जिन्दगी जीओ और मरने के बाद हूरों के साथ ऐियासी करो। इस्लाम को मानने वाले और आतंकबादियों का यही जीवन लक्ष्य होता है।

भारत की सरकारें यह तुष्टी करण का खेल-खेल रही हैं। मुसलमानों के प्रति तुष्टीकरण का राग अलाप रही हैं, तो ईसाइत के प्रतिपुष्टिकरण का खेल खेलती हैं। ईसाइयों से खिसिया कर कहती हैं कि, तुम्हीं ने तो हमें आधुनिकता सिखाई है। इस लिये तुम्हारी तो हर बात की हम पुष्टी करते हैं कि, आप जो कह रहे हैं वही सत्य है। इस तुष्टि और पुष्टि के खेल में भारतीय संस्कृति, सभ्यता, धर्म और इतिहास के प्रति सरकारें गम्भीर नहीं हैं। अब तक सरकारों ने हिन्दुओं के प्रति कुदृष्टि ही तो रखी। इस कुदृष्टि के कारण ही तो आतंन्कबाद को बढ़ावा मिला। इस प्रकार एक की तुष्टि, दूसरे की पुष्टि और तीसरे पर कुदृष्टि का नन्गा नाच सरकारें खेल रही हैं। जिसके परिणाम स्वस्प हिन्दू युवा वर्ग में अपने देश की संस्कृक्ति, धर्म और इतिहास के प्रति उदासीनता का भाव पनप रहा है।

भारत में आतंकबाद बिफरने के मुख्य मुख्य कारण-

१:-भारत में इस्लामिक आतंकबाद फैलने का प्रमुख कारण यह है कि हमने अपने अतीत से कोई शिक्षा नहीं ली। भारत में यदि प्रारम्भ में ही जो इस्लामिक आक्रमण कारी आये थे। उनके द्वारा मार-काट, लूट-पाट, महिलाओं के प्रति बुरी भावना, जबर दस्ती से भूमि पर जबरन कब्जा कर लेना, आदि के स्वभाव को पहचान कर यदि कोई ठोस कदम उठाये गये होते तो आतंक बाद भारत में नहीं फैलना।

२:-दूसरा प्रमुख कारण है, सरकार की तरफ से दिखाई जाने वाली छदम धर्म निरपेक्षता। सभी पंन्थों को अपनी पंथीय स्वतंत्रता कायम रखने का अधिकार हमारा संविधान देता है। यह अधिकार बना रहना चाहिये, हमें कोई आपति नहीं। किन्तु आपति तब होती है कि, जब हिन्दू विरोध का नाम धर्म निरपेक्षता मान लिया जाता है।

एक उदाहरण देकर समझाने का प्रयत्न कर रहा हूँ कि, यदि विहार राज्य में एक मुस्लिम को मुख्य मंत्री बनाने की बात की जाती है तो लोग उसे धर्म निरपेक्षता के नाम पर स्वीकार करते हैं। और कहते हैं कि ऐसा तो होना ही चाहिये। लेकिन जब जम्मू-काश्मीर में किसी हिन्दू को वहाँ का मुख्य मंत्री बनाने की बात आती है, तो तर्क में परिवर्तन आजाता है। तब कहा जाता है कि यह तो मुस्लिम वाहुल्य प्रान्त है। इस लिये यहाँ पर धर्म निरपेक्षता के नाम पर वहाँ पर मुस्लिम मुख्य मंत्री ही होना चाहिये।

हरियाना में मेवात जिला और केरल का मल्लपुरम मुस्लिम वाहुल्य होने के कारण वहाँ का जिला अधिकारी, और एस एस पी मुस्लिम ही बनाये जाते हैं। इन जगहों पर हिन्दू अल्प संख्यकों के उपर क्या-क्या नहीं होरहा है, ये तो वहाँ के हिन्दू ही बता सकते है, मगर वे अपने ऊपर होरहे अत्याचारों को बताने तक की भी उन्हें स्वतंत्र नहीं है।

मुस्लिम विव्दानों का भी मानना है कि, भारत में सैक्यूलरिज्म तभी तक जीवित है, जब तक कि यह हिन्दू बाहुल्य है। जिस दिन यहाँ हिन्दू अल्संख्यक हो जायगा, उसी दिन यहाँ सम्प्रदाय सापेक्ष राज्य की नीव रख दी जायगी। तब उस सम्प्रदाय साक्षेप राज्य में हिन्दुओं के लिये कोई मौलिक अधिकार नहीं रहेगें।

जहाँ-जहाँ पर मुस्लिम अल्पसंख्यक हैं, वहाँ-वहाँ पर वे वहू संख्यक होने का प्रयास कर रहे हैं। जैसे ही वहाँ पर वे वहुसंख्यक होते हैं, तत्काल अलग जिले की माँग कर देते हैं। और धीरे-धीरे वे अपना अलग राज्य की माँग की तरफ बढ़ते हैं। सन १८७६ में अफगानिस्तान इसी आधार पर प्रथक हुआ। फिर इसी बात को आधार मान कर दो पाकिस्तान बने, एक पश्चिमी पाकिस्तान दूसरा पूर्वी पाकिस्तान। जैसे कि मेवात और मल्लपुरम बन रहे हैं। इस कारण का निवारण ये है कि, देश में साम्प्रदायिक आधार पर जिले या प्रान्त का निर्माण न हो।

३:-इस्लामिक आतंकबाद का तीसरा कारण भारत के संविधान के अनुच्छेद २६ व ३० है। जो कि अल्प संख्यकों को अपनी शैक्षणिक संस्थायें खोलने की अनुमति देते है। इन अनुच्छेदों के रहते हुये, हम अपने देश में समान शिक्षा प्रणाली लागू नहीं कर सकते हैं। जो बच्चे मदरसों में शिक्षा ले रहे हैं, वे मजहवी कट्टरता में रखे-बसे होकर बाहर निकल रहे हैं। वे बास्तव में नैतिक रूप से मानवीय आचरण को शुध्द और पवित्र करने वाली शिक्षा से बंचित रह जाते हैं। हमारी सरकार को चाहिये कि मदरसा शिक्षा प्रणाली को तत्काल समाप्त करे और समान शिक्षा प्रणाली को लागू करे। जिस से मानवता का विकास हो और दानवता का नास हो। और संविधान की उपरोक्त दोनों धाराओं को तत्काल असर से समाप्त किया जाना चाहिये।

४:-भारत में आतंकबाद का चौथा कारण है, नेताओं का मिथ्या आचरण। नेता हमें बताते हैं कि भारत में आतंन्कबाद गरीबी, अशिक्षा और वे रोजगारी के कारण है। कुछ दिग्भ्रमित युवा हैं, जो ऐसा कर रहे हैं। ये सरासर झूठ है। क्यों कि कभी भी कोई, गरीब, अशिक्षित, वे रोजगार व्यक्ति किसी विचार धारा के मूल तत्वबाद को समझ ही नहीं सकता है। वह अपनी जीविका की चक्की में इतना पिसता रहता है कि, उसे कहीं और देखने-सुन ने का समय ही नहीं मिलता है।

५:-भारत में आतंकवाद का पाँचवा कारण यह है कि हमारे नेता आतंकवादियों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण रखते हैं। आतंकवादियों का आतिथ्य सत्कार किया जाता है। मानवाधिकारवादी संगठन उनके प्रति दया और करुणा का भाव रखते हैं। इस से इन आतंकवादियों की दानवता सम्मानित होती है और मानवता अपमानित होती है। इस लिये हमें यह करना चाहिये कि, समाज की मुख्य धारा को दुष्प्रभावित करने वाले व्यक्तियों या व्यक्ति समूहों, या संगठनों या दलो को दानव की संज्ञा से सम्बोधित किया जाय, और उनके लिये यह स्पष्ट कर दिया जाय कि, उन्हें किसी भी प्रकार के मानवाधिकारों के उपयोग का कोई अधिकार नहीं होगा। लेखक के मतानुसार इस मानव अधिकार पंच को तत्काल समाप्त कर देना चाहिये। साथ ही लघुमती पंच को भी।

६:-देश में इस्लामिक आतंन्क बाद के लिये एक छटा प्रमुख कारण है, देश में गठबन्धन की राजनीति। इस प्रकार की सरकारें दबाव में कार्य करती हैं। मुस्लिम मतों के लालची राज नेता और राजनैतिक दल सरकार की कठोरता का प्रदर्शन नहीं कर सकते। देश में अभी तक जितनी भी सरकारें आई वे सभी तुष्टी करण की राजनीति में लग गई। भाजप भी अपनी मूल विचार धारा से भटक गई। और काग्रेस की भाँति मुस्लिम तुष्टी करण की नीति में लग गई। गठबन्दन की सरकारों में बड़े दल की नीति नहीं अपितु गठबन्धन का मिनीमम एजेन्डा की नीति लागू होने लगती है। इस से सरकार की इच्छा शक्ति दुर्बल हो जाती है। सरकार का नेता मुख्य मंत्री या प्रधान मंत्री सरकार चलाने के लिये सरकार चलाता है, देश चलाने के लिये सरकार नहीं चलाता।

देश की जनता को चाहिये कि, वह गठबन्धन के लिये अपने मत का प्रयोग न करें, अपितु एक दल और एक व्यक्ति के लिये मतदान करे। राष्टवादी विचार धारा को प्रवल करने के लिये क्षेत्रीय दलों का वहिष्कार करे। और जाति, पंन्थ, सम्प्रदाय, भाषा और क्षेत्र को अस्वीकार कर दिया जाय।

७:-भारत में इस्लामिक आतंक बाद बिफरने का एक सातवाँ कारण यह भी है कि, साम्प्रदायिक आधार पर आरक्षण देना। इस से देश में समान नागरिक संहिता की स्थापना नहीं हो सकती। साम्प्रदायिक आधार पर आरक्षण देना देश के लिये राष्ट्रघाती सिध्द होगा, यह मुस्लिमों के भी हित में नहीं होगा। यदि आरक्षण देना ही है, तो आर्थिक आधार पर पिछड़े समाज को राजकीय संरक्षण देना चाहिये। न कि पंन्धीय आधार पर।

यदि हम उपरोक्त सात बिन्दुओं पर भी एक होजाय तो भारत में से आतंन्कबाद का सफाया होने में देर नहीं लगेगी। मुस्लिम लोग भी इस कार्य में सहयोगी बने राष्ट्र हित में ऐसी लेखक की अपील भी है, अनुरोध भी।

आतंकबाद निवारण कैसे हो?

१:-देश में एक समान शिक्षा प्रणाली लागू की जाय। २: शिक्षा मानवता का विकास करने वाली हो ३:-समान नागरिक संहिता लागू की जाय। ४: जाति, और पंन्थ के आधार पर आरक्ष ण की व्यवस्था न की जाय १५: देश के सभी नागरिकों को समान मौलिक अधिकार प्रदान कर वास्तविक पंन्थ निरपेक्षता अपनाई जाय।६:-वोटों की राजनीति के लिये मुस्लिमों का तुष्टीकरण बन्द होना चाहिये। ७:-आतंन्कबाद को लेकर एक राष्ट्रीय रण नीति बनाई जाय, जिस पर सभी राजनैतिक दलों की राय ली जाय। ८:-पाकिस्तान स्थित सभी आतंकी शिविरो कों नष्ट किया जाय।९:-आतंकबाद विरोधी कड़े कानूनों का निर्माण हो, और फिर उनका कठोरता से पालन हो।

●●●

धर्म के मूलभूत अर्थ को समझें

देश के केंद्रीय विद्यालयों में प्रातःकालीन प्रार्थना संस्कृत और हिंदी में पढ़ी जाती हैं। इस प्रार्थना का संस्कृत भाग उपनिषद्, महाभारत आदि ग्रंथों की शिक्षाओं पर आधारित होता हैं जैसे ''असतो मा सद्गमय तमसो माँ ज्योतिर्गमय'' तथा ''दया कर दान विद्या का हमें परमात्मा देना'' आदि। मध्य प्रदेश के रहने वाले एक व्यक्ति ने याचिका डाली है कि केंद्रीय विद्यालय में पढ़ी जाने वाली प्रार्थनाओं में किसी भी प्रकार के धार्मिक निर्देश नहीं दिए जा सकते। इसलिए इन्हें प्रार्थनाओं में से हटा देना छाइये। मैं दावा करता हूँ कि नास्तिक अथवा कम्युनिस्ट मानसिकता वाले इस व्यक्ति को धर्म की मुलभुत परिभाषा भी नहीं मालूम। यह व्यक्ति तो केवल कार्ल मार्क्स के धर्म अफीम है की रट तक ही सीमित हैं। जिसे यह धर्म समझ रहा है वह धर्म नहीं मजहब हैं। संस्कृत में वेद, उपनिषद् आदि ग्रन्थ केवल हिन्दू समाज के नहीं अपितु समस्त मानव समाज को दिशा निर्देश देने वाले ग्रन्थ हैं। ये ग्रन्थ समस्त प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव दिखाने और समस्त विश्व को एक परिवार के समान मानने का उपदेश देते हैं। वेद आदि ग्रन्थ की रचना जिस काल में हुई तब न तो देश आदि की सीमाएं थी, न ही हिन्दू-मुस्लिम आदि थे। वेद केवल मानवधर्म का प्रतिपादक है। मत-मतान्तर आदि तो मानव समाज की देन हैं, जबकि वेद ईश्वर का शाश्वत ज्ञान है। आज समाज में नैतिक मूल्यों का जिस तेजी से अवमूल्यन हो रहा है। उसका मुलभुत कारण अध्यात्म विद्या से अनभिज्ञता और अज्ञानता है। इस अज्ञानता का उपचार धर्मग्रंथों की शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार हैं। जिससे की युवा पीढ़ी को सदाचारी बनाया जा सकें। हमारे पाठयक्रम में नैतिक मूल्यों को वर्तमान में ही कोई वरीयता नहीं मिलती। जो थोड़ी बहुत शिक्षाओं का प्रचार हो रहा हैं। उसे भी अनाप-शनाप बहाने बना कर रोकने की पूरी तैयारी हैं। याचिकाकर्ता का कहना है कि इन प्रार्थनाओं से मानसिक विकास रुक जाता हैं, जिससे भविष्य में वैज्ञानिक बुद्धि के विकास में रूकावट होगी। मैं उक्त महोदय से पूछना चाहूंगा कि क्या वह यह बताएँगे कि क्या कोई भी आधुनिक मशीन यह सीखा सकती है कि हमें चरित्रवान होना चाहिए। हमें माता-पिता की सेवा करनी चाहिए। हमें अभावग्रस्त प्राणिमात्र की सहायता करनी चाहिए। हमें किसी को दुःख नहीं देना चाहिए। हमें किसी का शोषण नहीं करना चाहिए। हमें सत्य बोलना चाहिए-असत्य नहीं बोलना चाहिए। हमारा जन्म किसलिए हुआ है? हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है? नहीं। मानव जीवन से सम्बंधित एक भी समस्या का कोई भी समाधान एक मशीन से नहीं हो सकता। इससे तो यही सिद्ध हुआ कि केवल भौतिक प्रगति मनुष्य के जीवन की सभी समस्याओं के समाधान में असक्षम है। आध्यात्मिक ज्ञान में इन शंकाओं का समाधान हैं। मगर आप अपने दुराग्रह के चलते उन्हें मानने को,उन्हें अपनाने को ये महोदय तैयार नहीं हैं। उलटे अपनी इस दुराग्रही सोच को अन्यों पर थोपना भी चाहते हैं। धर्म संस्कृत भाषा का शब्द है। जोकि धारण करने वाली 'धृ' धातु से बना हैं। ''धार्यते इति धर्मः'' अर्थात जो धारण किया जाये वह धर्म है अथवा लोक परलोक के सुखों की सिद्धि के हेतु सार्वजानिक पवित्र गुणों और कर्मों का धारण व सेवन करना धर्म है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते है कि मनुष्य जीवन को उच्च व पवित्र बनाने वाली ज्ञानानुकुल जो शुद्ध सार्वजानिक मर्यादा पद्यति है। वह धर्म है। धर्म और मत/मजहब में भेद को इस लेख के माध्यम से जाने।

१. धर्म और मजहब समान अर्थ नहीं है। और न ही धर्म ईमान या विश्वास का प्रायः है।

२. धर्म क्रियात्मक वस्तु है। मजहब विश्वासात्मक वस्तु है।

३. धर्म मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल अथवा मानवी प्रकृति का होने के कारण स्वाभाविक है। और उसका आधार ईश्वरीय अथवा सृष्टि नियम है। परन्तु मजहब मनुष्य कृत होने से अप्राकृतिक अथवा अस्वाभाविक है। मजहबों का अनेक व भिन्न भिन्न होना तथा परस्पर विरोधी होना उनके मनुष्य कृत अथवा बनावटी होने का प्रमाण हैं।

४. धर्म के जो लक्षण मनु महाराज ने बतलाये है। वह सभी मानव जाति के लिए एक समान है और कोई भी सभ्य मनुष्य उसका विरोधी नहीं हो सकता। मजहब अनेक हैं। और केवल उसी मजहब को मानने वालों द्वारा ही स्वीकार होते हैं। इसलिए वह सार्वजानिक और सार्वभौमिक नहीं है। कुछ बातें सभी मजहबों में धर्म के अंश के रूप में है। इसलिए उन मजहबों का कुछ मान बना हुआ है।

५. धर्म सदाचार रूप है। अतः धर्मात्मा होने के लिये सदाचारी होना अनिवार्य है। परन्तु मजहबी अथवा पंथी होने के लिए सदाचारी होना अनिवार्य नहीं है। अर्थात जिस तरह धर्म के साथ सदाचार का नित्य सम्बन्ध है। उस तरह मजहब के साथ सदाचार का कोई सम्बन्ध नहीं है। क्यूंकि किसी भी मजहब का अनुनायी न होने पर भी कोई भी व्यक्ति धर्मात्मा (सदाचारी) बन सकता है। परन्तु आचार सम्पन्न होने पर भी कोई भी मनुष्य उस वक्त तक मजहबी अथवा पन्थाई नहीं बन सकता। जब तक उस मजहब के मंतव्यों पर ईमान अथवा विश्वास नहीं लाता। जैसे की कोई कितना ही सच्चा ईश्वर उपासक और उच्च कोटि का सदाचारी क्यूँ न हो। वह जब तक हजरात ईसा और बाइबिल अथवा हजरत मोहम्मद और कुरान शरीफ पर ईमान नहीं लाता तब तक ईसाई अथवा मुस्लमान नहीं बन सकता।

६. धर्म ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है अथवा धर्म अर्थात धार्मिक गुणों और कर्मों के धारण करने से ही मनुष्य मनुष्यत्व को प्राप्त करके मनुष्य कहलाने का अधिकारी बनता है। दूसरे शब्दों में धर्म और मनुष्यत्व पर्याय है। क्यूंकि धर्म को धारण करना ही मनुष्यत्व है। कहा भी गया है- खाना, पीना, सोना, संतान उत्पन्न करना जैसे कर्म मनुष्यों और पशुओं के एक समान है। केवल धर्म ही मनुष्यों में विशेष है। जोकि मनुष्य को मनुष्य बनाता है। धर्म से हीन मनुष्य पशु के समान है। परन्तु मजहब मनुष्य को केवल पन्थाई या मजहबी और अन्धविश्वासी बनाता है। दूसरे शब्दों में मजहब अथवा पंथ पर ईमान लेन से मनुष्य उस मजहब का अनुनायी अथवा ईसाई अथवा मुस्लमान बनता है। नाकि सदाचारी या धर्मात्मा बनता है।

-डा. विवेक आर्य

७. धर्म मनुष्य को ईश्वर से सीधा सम्बन्ध जोड़ता है और मोक्ष प्राप्ति निमित धर्मात्मा अथवा सदाचारी बनना अनिवार्य बतलाता है। परन्तु मजहब मुक्ति के लिए व्यक्ति को पन्थाई अथवा मजहबी बनना अनिवार्य बतलाता है। और मुक्ति के लिए सदाचार से ज्यादा आवश्यक उस मजहब की मान्यताओं का पालन बतलाता है। जैसे अल्लाह और मुहम्मद साहिब को उनके अंतिम पैगम्बर मानने वाले जन्नत जायेगे। चाहे वे कितने भी व्यभिचारी अथवा पापी हो जबकि गैर मुसलमान चाहे कितना भी धर्मात्मा अथवा सदाचारी क्यूँ न हो। वह दोजख अर्थात नर्क की आग में अवश्य जलेगा। क्यूंकि वह कुरान के ईश्वर अल्लाह और रसूल पर अपना विश्वास नहीं लाया है।

८. धर्म में बाहर के चिन्हों का कोई स्थान नहीं है। क्यूंकि धर्म लिंगात्मक नहीं हैं -न लिंगम धर्मकारणं अर्थात लिंग (बाहरी चिन्ह) धर्म का कारण नहीं है। परन्तु मजहब के लिए बाहरी चिन्हों का रखना अनिवार्य है। जैसे एक मुस्लमान के लिए जालीदार टोपी और दाड़ी रखना अनिवार्य है।

९. धर्म मनुष्य को पुरुषार्थी बनाता है। क्यूंकि वह ज्ञानपूर्वक सत्य आचरण से ही अभ्युदय और मोक्ष प्राप्ति की शिक्षा देता है। परन्तु मजहब मनुष्य को आलस्य का पाठ सिखाता है क्यूंकि मजहब के मंतव्यों मात्र को मानने भर से ही मुक्ति का होना उसमें सिखाया जाता है।

१०. धर्म मनुष्य को ईश्वर से सीधा सम्बन्ध जोड़कर मनुष्य को स्वतंत्र और आत्म स्वावलंबी बनाता है। क्यूंकि वह ईश्वर और मनुष्य के बीच में किसी भी मध्यस्थ या एजेंट की आवश्यकता नहीं बताता। परन्तु मजहब मनुष्य को परतंत्र और दूसरों पर आश्रित बनाता है क्यूंकि वह मजहब के प्रवर्तक की सिफारिश के बिना मुक्ति का मिलना नहीं मानता।इस्लाम में मुहम्मद साहिब अल्लाह एवं मनुष्य के मध्य मध्यस्थ की भूमिका निभाते हैं।

११. धर्म दूसरों के हितों की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति तक देना सिखाता है। जबकि मजहब अपने हित के लिए अन्य मनुष्यों और पशुओं के प्राण हरने के लिए हिंसा रुपी कुरबानी का सन्देश देता हैं। वैदिक धर्म के इतिहास में ऐसे अनेक उदहारण है, जिसमें गौ माता की रक्षा के लिए हिन्दू वीरों ने अपने प्राण न्योछावर कर दिए।

१२. धर्म मनुष्य को सभी प्राणी मात्र से प्रेम करना सिखाता है। जबकि मजहब मनुष्य को प्राणियों का माँसाहार और दूसरे मजहब वालों से द्वेष सिखाता है। जिहादी आतंकवादी इस बाद का सबसे प्रबल प्रमाण है।

१३. धर्म मनुष्य जाति को मनुष्यत्व के नाते से एक प्रकार के सार्वजानिक आचारों और विचारों द्वारा एक केंद्र पर केन्द्रित करके भेदभाव और विरोध को मिटाता है। तथा एकता का पाठ पढ़ाता है। परन्तु मजहब अपने भिन्न भिन्न मंतव्यों और कर्तव्यों के कारण अपने पृथक पृथक जत्थे बनाकर भेदभाव और विरोध को बढ़ाते और एकता को मिटाते है। संसार में धर्म के नाम पर भेदभाव एवं फुट का यही कारण है।

१४. धर्म एक मात्र ईश्वर की पूजा बतलाता है। जबकि मजहब ईश्वर से भिन्न मत प्रवर्तक/गुरु /मनुष्य आदि की पूजा बतलाकर अन्धविश्वास फैलाते हैं।

धर्म और मजहब के अंतर को ठीक प्रकार से समझ लेने पर मनुष्य अपने चिंतन मनन से आसानी से यह स्वीकार करके के श्रेष्ठ कल्याणकारी कार्यों को करने में पुरुषार्थ करना धर्म कहलाता है। इसलिए उसके पालन में सभी का कल्याण हैं।

●●●

इतिहास की पुनरावृत्ति

-डॉ० शंकर शरण

महान इतिहासकार विल ड्यूराँ ने अपना पूरा जीवन लगाकर वृहत ग्यारह भारी-भरकम खंडों में "स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन" लिखी थी। उसके प्रथम खंड में भारत संबंधी इतिहास के अंत में उन्होंने अत्यंत मार्मिक निष्कर्ष दिए थे। वह हरेक भारत-प्रेमी के पढ़ने योग्य है। हजार वर्ष पहले भारत विश्व का सबसे धनी और समृद्ध देश था। मगर उसे बाहर से आने वाले लुटेरे हर साल आकर भरपूर लूटते थे। यहाँ तक कि उनके सालाना आक्रमण का समय तक नियत था! मगर यह समृद्ध सभ्यता उनसे लड़ने, निपटने की कोई व्यवस्था नहीं कर पाती थी और प्रति वर्ष असहाय लुटती और रौंदी जाती थी। ड्यूराँ दुःख और आश्चर्य से लिखते हैं कि महमूद गजनवी से लेकर उसका बेटा मसूद गजनवी तक जब चाहे आकर भारत को लूटता-खसोटता रहा, और ज्ञान-गुण-धन संपन्न भारत कुछ नहीं कर पाता था। ड्यूराँ ने उस परिघटना पर दार्शनिक टिप्पणी की है कि सभ्यता बड़ी अनमोल चीज है। अहिंसा और शांति के मंत्र-जाप से वह नहीं बचती। उस की रक्षा के लिए सुदृढ़ व्यवस्था करनी होती है, नहीं तो मामूली बर्बर भी उसे तहस-नहस कर डालता है। क्या यह सीख आज भी हमारे लिए दुःखद रूप से सामयिक नहीं है?

दुर्भाग्य से भारत के आत्म-मुग्ध उच्च वर्ग ने इतिहास से कभी कुछ नहीं सीखने की कसम खा रखी है। हजार वर्ष पहले की छोड़ दें, पिछले सत्तर-अस्सी वर्ष का भी इतिहास यही दिखाता है कि भारतीय नेता अपनी ही मोहक बातों, परिकल्पनाओं पर फिदा होकर आश्वस्त बैठ जाते हैं। कि हम किसी का बुरा नहीं चाहते, तो हमारा कोई बुरा क्यों चाहेगा! अगर कभी ऐसा कुछ हो जाता है, तो जरूर कोई गलतफहमी है जिसे 'बात-चीत' से सुलझा लिया जाएगा। यही उनका पूरा राजनीतिक-दर्शन है, जो निरीहता और भोलेपन का दयनीय प्रदर्शन भर रह जाता है। इसीलिए, देसी या विदेशी, हर दुष्ट और कटिबद्ध शत्रु भारत का मान-मर्दन करता रहा है।

पिछले सत्तर साल से मुस्लिम लीग, जिन्ना, माओ, पाकिस्तान, जिहादी, नक्सली, आतंकवादी-सभी ने भारतीय जनता पर बेतरह जुल्म ढाए हैं। नेताओं समेत संपूर्ण उच्च वर्ग के पास उस का उत्तर क्या रहा है? मात्र लफ्फाजी, कभी थोड़ी देर छाती पीटना, दुनिया से शिकायत करना, और अपनी ओर से उसी रोजमर्रे के राजनीतिक-आर्थिक धंधे में लगे रहना। कहने के लिए हमारे पास संप्रभु राज्य-तंत्र, आधुनिक सेना, यहाँ तक कि अणु बम भी है। किन्तु वैसे ही जैसे मिट्टी के माधो के हाथ में तलवार! उस से कोई नहीं डरता। क्योंकि असलियत सबको मालूम है।

वही बरायनाम असलियत जिसे जानते हुए जिन्ना ने भरोसे से 'डायरेक्ट एक्शन' कर पाकिस्तान लिया था। जिसे जानते चीन जब चाहे हमें आँखें दिखाता है। जिसे समझकर हर तरह के संगठित अपराधी, आतंकवादी, अलगाववादी, नक्सली जहाँ चाहे हमला करते हैं। बंधक बनाते हैं, फिरौती वसूलते हैं। इन सबसे आँखें चुराते हुए भारत के अरबपति, राजनेता, विद्वान, संपादक- तमाम उच्च वर्ग-केवल अपने रुटीन धंधे-पानी में लगा रहता है। चाहे हर दिन भारत के किसी न किसी कोने पर कोई शत्रु बाहर, भीतर से हमला करता रहे, उसे पीड़ा नहीं होती। सारे बड़े, संपन्न लोग आराम से शेयर बाजार, सिनेमा, क्रिकेट, फैशन, घोटाले, गोष्ठी-सेमिनार आदि विविध काम में लगे रहते हैं। अगर किसी एक चीज की चिंता वे नहीं करते तो वह है देश के सम्मान तथा प्रजा की रक्षा। देशवासी आज भी भगवान भरोसे हैं। महमूद गजनवी के समय के धनी भारतीयों की तरह वे अन्न, धन, रेशम, जवाहरात, ज्ञान, तकनीक, आदि तो पैदा कर सकते हैं-अपनी रक्षा नहीं कर सकते।

उन्होंने इतिहास के सबक ही नहीं, रामायण, महाभारत समेत संपूर्ण भारतीय मनीषा की अनमोल शिक्षाओं की भी पूरी उपेक्षा की है। आखिर 'वीर भोग्या वसुंधरा' या 'टेढ़ जानि शंका सब काहू, वक्र चंद्रमा ग्रसहि न राहू' आदि जैसी अनेक सूक्तियों का अर्थ क्या है? यही कि देश की रक्षा किसी भलमनसाहत, महात्मापन या वार्तालाप से नहीं होती। उसके लिए कटिबद्धता, सैन्य शक्ति और आवश्यकता होते ही उसका निर्मम प्रयोग अनिवार्य होता है। इस से किसी भी नाम पर बचने की कोशिश हो, तो निश्चय मानिए-आप हर तरह के आततायी को निमंत्रण दे रहे हैं।

"राजनीति में राक्षसी शक्तियाँ काम करती हैं, जो यह नहीं समझता वह राजनीति में दुधमुँहे शिशु के समान है।"- महान जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर ने बड़ी गंभीर बात कही थी। राक्षसी शक्तियों पर उपदेश या भलमनसाहत काम नहीं करती। किन्तु लोकमान्य तिलक, श्री अरविन्द, सरदार पटेल जैसे कुछ अपवाद छोड़, भारतीय नेतृत्व, ऐसे शिशुओं समान ही रहा है। अन्यथा हर प्रकार के उत्पातियों के हाथों हमारी दुर्गति नहीं हो रही होती।

भारत-विभाजन पहली बड़ी दुर्गति थी, जब लाखों सुखी, संपन्न, सुशिक्षित लोग सत्य, अहिंसा की कथित राजनीति के भरोसे एकाएक मारे गए। अन्य लाखो- लाख बेघरबार हो गए। मुट्ठी भर लोगों ने दो-चार बार संगठित हिंसा कर, डरा कर भारतीय नेताओं को विभाजन के लिए तैयार कर लिया। जब विभाजन हो गया, तो भीषण पैमाने पर पूर्वी बंगाल और पश्चिमी पंजाब में कत्लेआम हुआ। दूसरी दुर्गति कश्मीर में हुई, जब संवैधानिक रूप से भारत का हिस्सा हो जाने के बाद भी उसका अकारण, अयाचित 'अंतर्राष्ट्रीय' समाधान कराने का भोलापन दिखाया गया। फिर, वैसे ही भोलेपन में तिब्बत जैसा मूल्यवान मध्यवर्ती (बफर) देश कम्युनिस्ट चीन को उपहार स्वरूप सौंप कर तीसरी दुर्गति की गई। मान लिया गया कि तिब्बत पाकर चीन भारत का परम मित्र हो रहेगा। जब उसी तिब्बत पर कब्जे के सहारे माओ ने भारत पर पहले छिप कर, फिर खुला हमला किया तो 'पंचशील' पर मोहित हमारे नेता हतप्रभ रह गए। प्रथम प्रधान मंत्री उसी सदमे से परलोक सिधारे।

राजनीतिक भोलेपन की ऐसी अंतहीन श्रृंखला केवल एक चीज दर्शाती है। कि भारतीय उच्च वर्ग के पास न राजनीति की पूरी समझ रही, न व्यवहारिक सूझ-बूझ, न साहस कि वह किसी प्रबल शत्रु का सामना कर सके। यहाँ तक कि वैचारिक सामना भी करने से वे झिझकते हैं। किसी तरह बहाने बना, दूसरों से मदद की अपेक्षा कर, अपना समय काट लेना ही हमारे नेताओं ने सीखा है। अंग्रेजों से उन्होंने सत्ता ले तो ली, किन्तु कभी तैयारी न की कि सत्ता की जिम्मेदारी भी उठाएं। सत्ता चलाने के नाम पर केवल सबसे निरापद काम, घोषणाएं, धन-वितरण, सामान्य प्रशासन आदि ही वह करते हैं। कठिन कामों से प्रायः सभी भागते हैं। यह भगोड़ापन आतंरिक और वैदेशिक, दोनों क्षेत्रों में बारं-बार दिखा है।

यह इतना नियमित है कि पूरी दुनिया हमारा राष्ट्रीय चरित्र जान गई है। माओ ने भारत को 'मंदबुद्धि गाय' और भारतीयों को 'खोखले शब्दों का भंडार' कहा था। गुलाम नबी फई के हाथों खेलने वाले हमारे बुद्धिजीवियों ने अभी क्या यही साबित नहीं किया? यह वस्तुतः हमारे राजनीतिक-बौद्धिक वर्ग की अक्षमता के ही अलग-अलग नाम हैं। नीति-निर्माण और शासन में भीरुता इसी का प्रतिबिम्ब है। जिहादियों, माओवादियों या बाहरी मिशनरियों की भारत-विरोधी गतिविधियों पर जनता क्रुद्ध होती है। किंतु शासकीय पदों पर बैठा उच्च वर्ग भोग-विलास में मगन रहता है। वह आतंकवादियों, अपराधियों, भ्रष्टाचारियों को जानते, पहचानते भी उन्हें सजा देने का साहस नहीं रखता।

लंबे समय से यह हमारी स्थाई विडंबना है। आसुरी शक्तियों, दुष्टता और अधर्म को आँख मिलाकर न देखना, उसके प्रतिकार का दृढ़ उपाय न करना, कठिन प्रश्नों पर निर्भय होकर विचार-विमर्श तक न करना-हिन्दू उच्च वर्ग की इस मूल दुर्बलता ने उन्हें संकटों का सामना करने योग्य नहीं बनने दिया है। हमारे शासक और नीति-निर्माता हमलावरों, हिंसकों की खुशामद कर के ही सदैव काम निकालना चाहते हैं।

अब तो मान लेना चाहिए कि गाँधीजी की 'अहिंसा' राजनीति ने हमारे उच्च वर्ग की कायरता को एक बेजोड़ ढाल देने का ही काम किया। स्वतंत्रता से पहले और बाद भी। इसीलिए वे इसका खूब ढिंढोरा पीटते हैं। इससे उन्हें अपनी चरित्र छिपाने का मुफीद उपाय दीखता है। इसी पर कवि गोपाल सिंह नेपाली ने नेताओं को फटकारते हुए लिखा था, "चरखा चलता है हाथों से, शासन चलता तलवार से।" कवि ने यह 'ओ दिल्ली जाने वाले राही, कहना अपनी सरकार से' के रूप में जरूरी संदेश जैसा कहा था। यह अनायास नहीं, कि ऐसे कवि, और इसके संदेश को भी सत्ताधारियों और लगभग संपूर्ण शिक्षित समाज ने भी भुला दिया है। चाहे यह उस कवि की जन्म-शती ही क्यों न हो पर नेपाली के शब्दों की गहरी, कड़वी सचाई बनावटी बातों से छिप नहीं सकती। जो लोग तलवार के समक्ष अहिंसा, प्रेम जैसी कोई चीज रखकर बात बदलते हैं, वे जाने-अनजाने पाखंड करते हैं। क्योंकि वे भी वस्तुतः किसी अहिंसा या प्रेम से अपना जीवन चलाने में विश्वास नहीं करते। यदि करते, तो अपनी सुरक्षा के लिए पुलिस, कमांडो, प्राइवेट गार्ड आदि के नियमित प्रावधान नहीं करते। एक ओर, राजकीय एवं सैन्य तंत्र पर विराट् खर्च, दूसरी ओर बुनियादी मामलों में भी जरूरी निर्णय लेने से टाल-मटोल करते रहना-यह पाखंड के साथ-साथ भीरुता भी है। इस का प्रमाण कि जिन हाथों ने तलवार संभाल रखी है, उसके पास इसे चलाने का माद्दा नहीं है। हमारे देश की कई आंतरिक और बाह्य समस्याएं इसी कारण हैं। इसीलिए कसाब से लेकर कलमाडी, सच्चर तक बार-बार होते रहेंगे। और किस देश में ऐसे लज्जास्पद उदाहरण हैं?

राज्यकर्मियों को अतुलित सुख-सुविधाएं इसीलिए दी जाती हैं क्योंकि वह जिम्मेदारी और खतरे उठाने का काम है। जो केवल लफ्फाजी करते, अकर्मण्य बैठे, सुरक्षित रहते हैं-उन्हें कदापि राज्यकर्म में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। वह देश के साथ विश्वासघात है। यदि सत्ताधारी चोट खाने से डरेगा, तो गद्दी पर चाहे बना रहे, राज वह नहीं करेगा। राज दूसरे करेंगे। साहसी ही शासन कर सकते हैं। चाहे वे विदेशी हों या स्वदेशी।

आज भारत का राजनीतिक परिदृश्य इसका दुःखद प्रमाण है। पूरा राज्यकर्म मानो नगरपालिका जैसे कार्य और शेष बंदर-बाँट, झूठी बातें कहने, करने के धंधे में बदल दिया गया है। भ्रष्टाचार से लेकर आतंकवाद, सभी गड़बड़ियों में वृद्धि का यही मुख्य कारण है। चौतरफा ढिलाई, उत्तर-दायित्वहीनता और भगोड़ापन बढ़ रहा है। इस घातक बीमारी को समय रहते पहचानें। याद रहेः उत्पादन और व्यापार में वृद्धि राष्ट्रीय सुरक्षा का पर्याय नहीं। अन्यथा सोने की चिड़िया क्यों लुटती? ●●●

पृष्ठ.१ का शेष..(मरा हुआ धर्म...)

निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति।।
—(मनु० ८/१७) गीता का ज्ञान

अर्थ—धर्म ही एक मित्र है जो मरने पर भी आत्मा के साथ जाता है, अन्य सब पदार्थ शरीर के नष्ट होने के साथ ही नष्ट हो जाते हैं। चाणक्य नीति के अनमोल सुविचार-

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति।।
—(मनु० ४/२४१) चाणक्य नीति

अर्थ—सम्बन्धी मृतक के शरीर को लकड़ी और ढेले के समान भूमि पर फेंककर विमुख होकर चले जाते हैं, केवल धर्म ही आत्मा के साथ जाता है। अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश धर्म के आचरण पर मनु महाराज ने बहुत बल दिया है—

अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् ।
हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते ।।
—(मनु० ४/१७०) वाल्मीकीय रामायण

अर्थ—जो अधर्मी, असत्य भाषी, अपवित्र व अनुचित तथा हिंसक है, वह इस लोक में सुख नहीं पाता।

न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् ।
अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन्विपर्ययम् ।।
—(मनु० ४/१७१) वैदिक-संस्कृत

अर्थ—धर्माचरण में कष्ट झेलकर भी अधर्म की इच्छा न करे, क्योंकि अधार्मिकों की धन-सम्पत्ति शीघ्र ही नष्ट होती देखी जाती है। योग साधना आयुर्वेद चिकित्सा और रेसिपी

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ।।
—(मनु० ४/१७२) महाभारत

अर्थ—संसार में अधर्म शीघ्र ही फल नहीं देता, जैसे पृथिवी बीज बोने पर तुरन्त फल नहीं देती।वह अधर्म धीरे-धीरे कर्तृता की जड़ों तक को काट देता है। शिशु-संस्कृतम्

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नांजयति समूलस्तु विनश्यति ।।
—(मनु० ४/१७४) वैदिक विचारधारा

अर्थ—अधर्मी प्रथम तो अधर्म के कारण उन्नत होता है और कल्याण-ही-कल्याण पाता है, तदन्नतर शत्रु-विजयी होता है और समूल नष्ट हो जाता है।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ।।
—(मनु० ८/१५) वेदवाणी

अर्थ—मारा हुआ धर्म मनुष्य का नाश करता है और रक्षा किया हुआ धर्म मनुष्य की रक्षा करता है।इसलिए धर्म का नाश नहीं करना चाहिए, ऐसा न हो कि कहीं मारा हुआ धर्म हमें ही मार दे !

वृषो हि भगवान् धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम्।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत्।।
—(मनु० ८/१६) काव्यांजलिः

अर्थ—ऐश्वर्यवान् धर्म सुखों की वर्षा करने वाला होता है।जो कोई उसका लोप करता है, देव उसे नीच कहते हैं, इसलिए मनुष्य को धर्म का लोप नहीं करना चाहिए। आर्ष दृष्टि-

चला लक्ष्मीश्चला प्राणाश्चलं जीवितयौवनम्।
चलाचले हि संसारे धर्म एको हि निश्चलः।।

अर्थ—धन, प्राण, जीवन और यौवन—ये सब चलायमान हैं। इस चलायमान संसार में केवल एक धर्म ही निश्चल है।

भाषाणां जननी संस्कृत भाषा

प्रश्न उठता है कि जिस धर्म की इतनी महिमा कही गई है, वह धर्म क्या है ? इस सन्दर्भ में मनु महाराज का श्लोक ध्यान देने योग्य है— वीरभोग्या वसुन्धरा

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।
—(मनु० ६/९२) उपनिषद् प्रकाश

अर्थ—धीरज, हानि पहुँचाने वाले से प्रतिकार न लेना, मन को विषयों से व, चोरी न करना, मन को राग-द्वेष से परे रखना, इन्द्रियों को बुरे कामों से बचाना, मादक द्रव्य नशा आदि का सेवन न करके बुद्धि को पवित्र रखना, ज्ञान की प्राप्ति, सत्य बोलना और क्रोध न करना—ये धर्म के दस लक्षण हैं।

पृष्ठ.....२ का शेष (वेद मंत्र...)

यन्त्र के पुर्जे नहीं जानते कि वे यन्त्र के पुर्जे हैं। यन्त्र भी नहीं जानता कि कौन पुर्जा मेरा है और उसका क्या काम है। इसका ज्ञान तो यन्त्र के संचालक को ही है जो हर पुर्जे के वैयक्तिक धर्मों का ज्ञान रखता है और उन पुर्जों को यन्त्र के संचालन में क्या करना है इसको भी समझता है। इसी प्रकार जगत् के गतिविधान का भी एक संचालक है। वह जानता है कि सूर्य को क्या करना है और चन्द्रमा को क्या करना है। चन्द्रमा नहीं जानता कि सूर्य क्या है। सूर्य नहीं जानता कि चन्द्रमा क्या है, परन्तु जगत् के गतिविधान का नियन्ता सूर्य और चन्द्र दोनों की गतियों का ज्ञाता तथा स्वामी है। उसी नियन्ता के लिए 'ईश' (ईट्) कहा है। 'ईश ऐश्वर्ये' से क्विप् प्रत्यय करके 'ईट्' (ईष्टे इति) बना। उसका तृतीयान्त हुआ 'ईशा'। 'ईशा' का अर्थ हुआ 'नियन्ता के द्वारा।' 'वास्यम्' या 'आवास्यम्' का अर्थ है 'आच्छादनीयम्'। वस् धातु से 'ण्यत्' (ऋहलोर्ण्यत्। पा०सू० ३.१.१२४) प्रत्यय लगाकर 'वास्य' और 'आङ्' उपसर्ग लगाने से 'आवास्यम्' बना। 'आवास्यम्' का अर्थ हुआ कि प्रत्येक गतिविधान के लिए आवश्यक है कि उसमें संचालक का सान्निध्य हो। इसी प्रकार इस महान् गतिविधान के लिए आवश्यक हुआ कि उसका कोई ऐसा संचालक हो जिसके वश में समस्त गतिमान पदार्थ हों। 'परमात्मतत्त्व' की सिद्धि में परमोत्कृष्ट हेतु यही है कि यह प्रपंच एक गतिविधान है। गति के संचालक के बिना कोई गतिविधान बन ही नहीं सकता। कुछ लोग यह तो मानते हैं कि यह प्रपंच गतिविधान है परन्तु वे इसको स्वयं-संचालित या ऑटोमैटिक (Automatic) कहते हैं। वे इस बात को भूल जाते हैं कि ऑटोमैटिक (स्वयं-संचालित) यन्त्र भी वस्तुतः स्वयं संचालित नहीं होता। उसका भी कोई 'वशी' (वश में रखनेवाला) होता है। अन्यत्र कहा है- ''विश्वस्य मिषतः वशी''। (ऋग्वेद १०.१९०.२) यही 'वशी' इस मन्त्र में 'ईट्' शब्द द्वारा उल्लिखित है। तात्पर्य यह है कि इस प्रपंच की ओर देखने और इसकी रूपरेखा पर विचार करने से यह आवश्यक हो जाता है कि हम 'परमात्मतत्त्व' की ओर जाएं। संसार के बाह्य चलन और मनुष्य के मस्तिष्क (मनोवैज्ञानिक) नियमों से यही निर्धारित होता है।

कुछ लोग समझते हैं कि यदि प्रपंच गतिशील है तो यह नश्वर हुआ। नित्यता या सत्ता तो जाती रही, क्योंकि प्रत्येक गति नाशवान् है, अतः गतिविधान भी अनित्य ठहरा। परन्तु व्याकरण का एक सिद्धान्त है-''एकदेशविकृतमनन्यत्वम्'', अर्थात् एक देश के विकार से कोई वस्तु अन्य नहीं हो जाती। गधे का कान काट दिया जाय तो गधा ही रहेगा। यह भावना विश्वव्यापी है। इसी प्रकार सृष्टि के एक देश में विकार होने से समस्त सृष्टि नष्ट नहीं हो जाती। प्रपंच का प्रवाह है। यह प्रवाह ही ईश्वर के अस्तित्व का सूचक है। यों कहना चाहिए कि जगत् का गतिविधान हमें मजबूर करता है कि हम ईश्वर की सत्ता को मानें, और कोई चारा ही नहीं है।

अब आप इस गतिविधान से अपने सम्बन्ध का हिसाब लगाइए। आप ऐसे चक्र से सम्बद्ध हैं जो कभी एक अवस्था में नहीं रहता, निरन्तर गतिवान् है, इसलिए यदि आप किसी देश से चिपक जायेंगे तो नष्ट हो जायेंगे। वह यन्त्र आपके लिए रुकेगा नहीं। इसलिए आवश्यक है कि हम इस गतिविधान के साथ ऐसी भावना रक्खें जैसी एक यात्री की मार्ग के साथ होती है। यात्री मार्ग पर चलता है, उससे चिपटता नहीं अर्थात् मार्ग के प्रत्येक प्रदेश से उसका सम्बन्ध क्षणिक होता है। वह उसको छोड़कर आगे बढ़ जाता है। यदि रात्रि का पैर एक स्थान पर चिपक जाए तो यात्रा भंग हो जाए। वह मार्ग पर चलेगा, चिपटेगा नहीं। इसी का नाम 'क्रान्ति' है। क्रान्ति का अर्थ है आगे बढ़ना। आगे बढ़ने का अर्थ यह है कि पिछले स्थान को छोड़ना। इसीलिए 'तेन त्यक्तेन' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'तेन' का अर्थ है ''जगता'' (तृतीयान्त)। मार्ग यात्रा का साधक है, परन्तु तभी तक जब तक कि वह मार्ग 'त्यक्त' होता जाए अर्थात् छूटता जाए, मार्ग चिपटे तो बुरा और यात्री चिपटे तो बुरा। मार्ग अर्थात् जगत् तो किसी से चिपटता नहीं। उसका स्वभाव ही चिपटने का नहीं। हां, मनुष्य चिपटना चाहता है और उसकी यह चिपटने की इच्छा उसकी यात्रा में बाधक होती है। आप चलते नहीं, ढकेले जाते हैं। आपकी आन्तरिक इच्छा चिपटने की होती है। परन्तु दैवीशक्ति आपको बाधित करती है कि आपको आगे को ढकेल दिया जाए। आप अपने भोगों के लिए जगत् का प्रयोग अवश्य करें, क्योंकि जगत् आपके भोगों का साधक है, उसी के द्वारा आप भोगेंगे। परन्तु इस साधक का विशेषण है 'त्यक्त'। त्यागा जाता हुआ या त्यागा जानेवाला अर्थात् जगत् को जो मार्ग के समान यात्रा का साधन बनाना चाहता है उसे त्यागभाव धारण करना होगा, चिपटने की भावना छोड़ देनी होगी। हम जगत् के एक मनोरम, सुन्दर और सुखप्रद उद्यान में से गुजरते हैं। समस्त उद्यान हमारे सुख के लिए है। मनुष्य जीवन से बढ़कर और कौनसा सुखप्रद जीवन होगा! परन्तु जगन्नियन्ता का आदेश है कि इस बाग का उपभोग करो, मार्ग के रूप में। यह मार्ग है, सराय नहीं। सड़क को घेरकर खड़े हो जाइए, पुलिस गिरफ्तार कर लेगी। मार्ग चलने के लिए है, डेरा डालने के लिए नहीं। इसलिए त्यागभाव धर्म का मुख्य अंग है। न भोगने का नाम त्याग नहीं, भोग से न चिपटने का नाम त्याग है और त्यागमय उपभोग सदा सुखकारी होता है। दुःख भोग में नहीं, चिपटने में है। इसीलिए दो आदेश साथ-साथ दिये हैं- ' भुंजीथाः' और 'मा गृधः'। भोगों और चिपटो मत ! जगत् को भोगने से आप कहां रुक सकते हैं! आपकी शारीरिक आवश्यकताएं आपको भोगने के लिए बाधित करती हैं। यह कैसे सम्भव है कि आप खाना न खाएं! सौन्दर्य का निरीक्षण करके आनन्द न लें ! भोग तो जीवन के साथ है परन्तु भोग को मर्यादा में रखने के लिए 'मा गृधः' (चिपटो मत) यह आदेश भी आवश्यक है। मुमुक्षु भोगने के साथ त्यागने के लिए भी उद्यत रहता है।

अब प्रश्न यह है कि न चिपटने का आदेश क्यों दिया? मार्ग और सराय में भेद है। मार्ग भी स्थान है और सराय भी। परन्तु सराय केवल आपके लिए है, मार्ग सबके लिए है। जगत् के गतिविधान में सबका भाग है, केवल एक का नहीं। जगरूपी धन 'कस्यचित्' अर्थात् किसी एक का नहीं है, सबका है। ऐसा तो नहीं है कि वह धन किसी का नहीं है। किसी का न होता तो उसे कोई न भोगता। यदि कोई न भोगता तो उस धन का लाभ ही क्या था ? धन व्यर्थ नहीं है, भोगने की वस्तु है। परन्तु एक जीव के भोगने की नहीं, सबके भोगने की, अतः जब कोई एक व्यक्ति धन पर प्रभुत्व जमाना चाहता है तो धन उसको सुखद होने के स्थान में दुःखद हो जाता है। जिस प्रकार स्वादिष्ट वस्तु अधिक देर तक मुंह में रखने से स्वादहीन हो जाती है, उसी प्रकार धन से चिपटने से धन अलाभकर हो जाता है।

इस प्रकार इस मन्त्र में चार बातें मुख्य हैं-

(१) जगत् के गतिविधान की वास्तविकता, (२) ईश्वर का उस पर प्रभुत्व, (३) जगत् भोग के लिए है, (४) जगत् से चिपटना नहीं चाहिए।

पंजी०सं० आर.एन.आई.-२२४१/५७ -आर्यमित्र १५ मई, २०२५ पोस्टल रजि.जी.पी.ओ. लखनऊ/एन.पी.-१४/२०१६-२१ एक प्रति ₹ ५.००

आर्य मित्र

नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०९४१२६७८५७१, मंत्री-०९४१५३६५५७६, सम्पादक-९४५१८८१९७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,

.....

.....

परमात्मा सृष्टि की रचना में सर्वोच्च निमित्त कारण है। परमात्मा का नाम सच्चिदानंद है अर्थात सत चित आनंद।

-श्रीमती रीटा माथुर

सत=अनंत, असीमित व्यक्त व अव्यक्त प्राण, चित=अनंत, असीमित चेतना, आनंद=अनंत, असीमित आनंद

प्रकृति सृष्टि की रचना में तृतीय उपादान कारण है। प्रकृति बनती है और बिगड़ती है। प्रकृति सत (असत) है।

परमात्मा, जीव और प्रकृति तीनों अज हैं। तीनों अनादि हैं। परमात्मा जीव और प्रकृति का अधिष्ठाता है। ये तीनों सृष्टि के कारण हैं। इनके कारण कोई नहीं। इन तीनों के द्वारा किया गया कार्य है। यह विस्तृत प्रकृति ब्रह्माण्ड, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह उपग्रह आदि निर्जीव सृष्टि और सजीव सृष्टिः पेड़ पौधे, जीव जन्तु।

निर्जीव सृष्टि और सजीव सृष्टि में क्या भेद है?

निर्जीव सृष्टि में केवल प्राण व्याप्त हैं। सजीव सृष्टि में प्राण व आत्मा दोनों व्याप्त हैं। सजीव सृष्टि/प्राणधारियों को उनकी अपनी आत्मा सजीवता प्रदान करती है क्योंकि आत्मा चेतन शक्ति है।

आप सब परमात्मा को सच्चिदानंद, सर्वव्यापक, सर्वांतर्यामी, सर्वदर्शी, सर्वशक्तिमान कहते हैं। अतः परमात्मा अनंत प्राण हैं अर्थात यह प्राण सृष्टि के कण कण में व्याप्त हैं परंतु प्रत्येक कण में सीमित प्राण हैं। परमात्मा अनंत चेतना हैं अर्थात प्रत्येक जीवधारी की चेतना परंतु प्रत्येक जीवधारी की चेतना सीमित है। परमात्मा अनंत आनंद है परन्तु यह आनंद केवल महान योगियों/साधक/तपस्वियों को ही योग साधना से प्राप्त है।

आप कहते हैं कि स्थूल शरीर/नश्वर शरीर प्रकृति के पंच तत्त्वों : आकाश,वायु, अग्नि,जल,पृथ्वी/ईथर, गैसीय अवस्था,अग्नि/ऊर्जा, द्रव अवस्था, ठोस अवस्था से निर्मित है।दाह संस्कार के बाद यह स्थूल शरीर पंच तत्त्वों में विलीन हो जाता है। यह कैसे विलीन हो जाता है? भौतिक अग्नि जो आप प्रज्वलित करते हैं, जो दृश्य है ,स्थूल शरीर जो अब आत्मा व प्राण त्याग चुका है, के सभी पदार्थों को सूक्ष्म कर्ण में रूपांतरित कर देती है। यह सभी कर्ण विघटित होकर प्रकृति के मूल तत्त्व सत्व, रज व तम में रूपांतरित हो जाते हैं। इन सभी तत्त्वों में प्राण व्याप्त हैं।

इस प्राण को दैवीय प्रकृति भी कहते हैं। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी सभी पंच तत्त्वों में प्राण व्याप्त हैं। अतः आपके स्थूल शरीर के प्रत्येक कर्ण में प्राण व्याप्त हैं।

अथर्ववेद, ११ काण्ड, ४ पूरा सूक्त, सभी मंत्र प्राण की महिमा का वर्णन करते हैं :-

समस्त प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष, दृश्य व अदृश्य व चराचर जगत प्राण के वश में हैं। अर्थात यही प्राण सबमें व्याप्त हैं। प्राण सबकी अंतः निहित शक्ति है। मंत्र ३ में कहा गया है कि प्राण विराट हैं। सभी प्राणियों की जीवन शक्ति प्राण हैं अर्थात प्राण ही जीवन शक्ति प्रदान करता है। प्राण तभी जीवन शक्ति प्रदान करता है, जब स्थूल शरीर में आत्मा व्याप्त है क्योंकि आत्मा ही प्राण को जीवन शक्ति के लिए क्रियान्वित/संचालित करती है। आत्मा ही प्राण को जैविक क्रिया संपन्न करने में सक्रिय करती है। आत्मा प्राण के द्वारा स्थूल शरीर में सभी जैविक क्रियाएं करती हैं।

आत्मा निकल जाने के बाद प्राण अचेत हो जाते हैं क्योंकि प्राण जड़ है। आत्मा चेतन है। प्राण को चेतना समझना बहुत बड़ी भूल है। प्राण ऊर्जा शक्ति है जो आपको भोजन से प्राप्त होती है। कुपोषण के कारण यही प्राण शक्ति क्षीण पड़ जाती है लेकिन प्राण सचेत रहते हैं क्योंकि आत्मा प्राण को चेतन रखती है।

इस प्राण का प्रवाह समस्त ब्रह्माण्ड में है। यह प्राण ब्रह्माण्ड में लगातार तरंगों व किरणों के रूप में प्रवाहित हैं। इस प्राण का एक गुण है रूप बदलना। यह प्राण अपने रूप बदलता रहता है। द्वितीय मंत्र कहता है कि प्राण गति प्रवाह हैं।ये गति प्रवाह तरंगे जो अंतरिक्ष में निरंतर घूम रही हैं। प्राण का दूसरा रूप परिवर्तन होना अर्थात रूपांतरित होना जैसे कभी कड़कती बिजली / प्रकाश ऊर्जा, कभी बादलों की गर्जन / ध्वनि ऊर्जा, कभी वर्षा / जल आदि। अर्थात प्राण / सत / दैवीय प्रकृति कभी प्रकाश ऊर्जा, विद्युत ऊर्जा, ऊष्मीय ऊर्जा, तापीय ऊर्जा, ध्वनि ऊर्जा, चुंबकीय ऊर्जा में रूपांतरित होती है। आधुनिक विज्ञान भी यही कहता है कि ऊर्जा न तो नष्ट होती है और न ही पैदाध उत्पन्न होती है। ऊर्जा का रूपांतरण होता है।यही विद्युत प्राण रासायनिक संघात का कारण हैं। जल दो विभिन्न गैसों ऑक्सीजन / प्राण वायु और हाइड्रोजनध सत्व विद्युत रूपी प्राण शक्ति द्वारा संगठित व निश्चित अनुपात में अणु का योग है।

यजुर्वेद, अध्याय ३, मंत्र ७ कहता है कि विद्युत नाम से प्रसिद्ध सब मनुष्यों के अंतः करण में रहने वाली जो अग्नि की कांति है वह प्राण वायु व अपन वायु के साथ युक्त होकर प्राण, अपान, अग्नि और प्रकाश आदि चेष्टाओं के व्यहवारों को प्रसिद्ध करती है।

प्रत्येक मनुष्य के शरीर में प्राण विद्युत व अग्नि के रूप में व्याप्त हैं। आपने ईसीजी के बारे में जानकारी रखते हैं।यह इलेक्ट्रो कार्डियो ग्राफ है। यह आपके स्थूल शरीर में प्रवाहित विद्युत को मापते हैं। मृतक शरीर इलेक्ट्रो कार्डियो ग्राफ नहीं देता है। यह विद्युत ही आपके प्राण हैं। यह प्राण समस्त स्थूल शरीर में प्रवाहित हैं।

प्राण सर्वस्व व्याप्त हैं। उदाहरण के लिए जब आप दो पत्थरों को रगड़ते हैं, पत्थरों में अंतः निहित प्राण प्रकाश ऊर्जा और ऊष्मीय ऊर्जा के रूप में रूपांतरित हो जाती है। जब आप अपने दोनों हाथ रगड़ते हैं,आपकी अंतः निहित विद्युत रूपी प्राण शक्ति ऊष्मा के रूप में रूपांतरित हो जाती है और आप कुछ क्षण के लिए हाथ गर्म महसूस करते हैं।इसी प्रकार अनेक उदाहरण हैं।

नवम समुल्लास, सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि दयानंद सरस्वती कहते हैं कि प्राण जड़ हैं। न उसको भूख न पिपासा। किंतु प्राण वाले जीव को क्षुधा, तृषा लगती है।

आपके स्थूल शरीर में प्राण जब तक सचेत हैं, जब तक आपके शरीर में आत्मा व्याप्त है। जब किसी भी जीव की मृत्यु होती है, प्रथम आत्मा स्थूल शरीर त्याग देती है। कुछ क्षण तक नश्वर शरीर गर्म रहता है क्योंकि प्राण बाद में नश्वर शरीर छोड़ते हैं।

नश्वर शरीर मिट्टी हो जाता है।

न आत्मा न ही प्राण।

मनीषी चिंतन

पच्चिस मिनट ठिकाने नौ

पच्चिस मिनट ठिकाने नौ, ध्वस्त किए पैमाने दो।
पहलगाम के बदले में,सारे पाप दिए हैं धो।
लाशों से बहते-बहते, आखिर कब तक हम सहते,
पड़ा त्रिशूल उठाना ही, इतने काँटे दिए चुभो।
उद्दण्डों को दंड दिया,सब कहते हैं सही किया,
गंजे सिर पर तेल लगा,मारे जूते भिगो-भिगो।
अब भी अगर नहीं माना,सांसें मारेंगी ताना,
या तो प्यासा मारेंगे,या मारेंगे डुबो-डुबो।
पाल रहा आतंकों को,तक्षक जैसे डंकों को,
खुद को रोक नहीं पाया,अब क्यों कहता रुको- रुको।
कब्रों बीच लिटा देंगे,नाम-निशान मिटा देंगे,
अब हम गिनते जायेंगे, अस्सी नब्बे पूरे सौ।
पोंछे थे सिन्दूर जभी, क्रुद्ध हुआ 'सिन्दूर' तभी,
रात बना दी सिन्दूरी,अब जीवन भर रोना रो।
यह भारत है सुन बेटे,मूरख किस्मत के हेठे,
बाप तुम्हारा है भारत, दुनिया वालो सुनो-सुनो।
फिर से गलती मत करना, भारी दंड पड़े भरना,
सब कुछ वापिस ले लेंगे,नहीं सुनेंगे थमो-थमो।
घर में घुस कर मारा है,बम बम बम उच्चारा है,
पूरी दुनिया में सुन लो,गूंज रहा है नमो-नमो।
हम नरसिंहानन्द सुनो, शान्ति-क्रान्ति के छन्द सुनो,
मस्त "मनीषी" रहते हैं,नहीं जानते जलो-भुनो।

प्रोफेसर डॉ सारस्वत मोहन मनीषी

स्वामी–आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक–पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस,
5–मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है–सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।